नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • पूर्णांक 120 • वर्ष 10 • अंक 5
जून 2008 • तीन रुपये • सोलह पृष्ठ

पेट्रोल, डीज़ल और रसोई गैस की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी

तेल कम्पनियों के मुनाफ़ों, सरकारी तंत्र और अमीरजादों की ऐयाशियों का बोझ आम जनता पर

सम्पादक

प्रधानमंत्री की कुर्सी सम्भालते समय मनमोहन सिंह ने डींग हाँकी थी कि 'गरीबों के आँसू पोंछना' उनकी सरकार की पहली प्राथमिकता है। पिछले चार सालों में आँसू पोंछने की कौन कहे उनकी सरकार गरीबों को खून के आँसू रुला रही है। गेहूँ, चावल, खाने के तेल और दूसरी ज़रूरी चीज़ों की महंगाई पर रोक लगाने की थोथी कवायदों के बाद अब उसने पेट्रोल, डीज़ल और रसोई गैस की कीमतों में भी भारी बढ़ोत्तरी कर दी है।

मनमोहन सरकार ने पूरी बेशर्मी से फिर जता दिया है कि पूँजी की सेवा-टहल में चौबीसों घण्टे जुटे रहना ही उसकी पहली प्राथमिकता है। देशी-विदेशी मुनाफाखोरों के आगे दण्डवत सरकार ऐलान कर रही है कि अन्तरराष्ट्रीय तेल बाज़ार में बढ़ी कीमतों के आगे वह लाचार है। उधर, ग़रीबों के अरमानों से खेलने वाले विपक्षी पार्टियों के चुनावी मदारी सरकार की इस लाचारी को सुनहरे मौके में बदलने में जुट गये हैं। अब ये मक्कार नेता हाथ में अपना-अपना बदबूदार रूमाल लेकर 'गरीबों के आँसू पोंछने' के लिए धकापेल मचाये हुए हैं।

सरकार की लाचारी नहीं मक्कारी

मक्कारी को लाचारी का नाम देने का यह सरकारी अन्दाज़ कोई नया नहीं हैं। जब भी महंगाई, बेकारी और गरीबी को रोकने की बात उठती है तो दुनिया की पूँजीवादी सरकारें ऐसे ही मक्कारी भरे बयान देती हैं। कभी बढ़ती जनसंख्या की दुहाई दी जाती है तो कभी विश्व बाजार के खेल की। इस खेल में अगर विश्व बाज़ार के बड़े खिलाड़ियों का कभी कुछ बिगड़ता भी है तो उनकी तलुवाचाटू सरकारें बिगड़ा खेल बनाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा देती हैं। लेकिन बात जब गरीबों की आती है तो वे हाथ खड़े कर देते हैं। महंगाई के सवाल पर मनमोहन सरकार ने भी मक्कारी और बेशर्मी से हाथ खड़े कर दिये हैं।

तेल की कीमतों में बढ़ोत्तरी का ऐलान करते हुए पेट्रोलियम मंत्री मुरली देवड़ा की मुस्कुराहट में अगर लोगों को शैतानी अट्टहास की गूँज सुनाई पड़ी हो तो कतई अचरज़ नहीं होना चाहिए। ऊपर से तुर्रा यह कि बढ़ायी गयी कीमतों का ऐलान करते हुए महाशय अहसान भी जता रहे थे कि उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार की बढ़ी कीमतों के मुकाबले 'बेहद मामूली' बोझ उपभोक्ताओं पर डाला है। आँकड़ों की यह बाजीगरी करते हुए वे तेल की कीमतें तय करने में छुपे गोरखधन्धे को छुपा गये। इस गोरखधन्धे को न समझ पाने वाले आम उपभोक्ता सचमुच यह समझ बैठेंगे कि पेट्रोलियम मंत्री ने उनपर कितना बड़ा अहसान किया है।

परजीवियों जमातों का बोझ आम जनता पर

माना कि अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में तेल के व्यापार के बड़े खिलाड़ी तरह-तरह के हथकण्डे अपनाते हुए तेल की कीमतों में बेतहाशा बढ़ोत्तरी कर (123 डालर प्रति बैरल) अकूत मुनाफा बटोरने में जुटे हुए हैं। फिर भी अगर सरकार को गरीब एवं आम मध्यवर्गीय जनता के हितों की रत्ती भर भी परवाह होती तो वह खुदरा कीमतों में बढ़ोत्तरी के बजाय तेल के आयात पर लगने वाले भारी सीमा शुल्क और उत्पाद शुल्क में कटौती कर सकती थी। लेकिन ऐसा करने पर सरकार मंत्रियों-नौकरशाहों के विदेशी सैर-सपाटों और बेशुमार फिजूलखर्चियों का बोझ कैसे उठाती? तेल पर लगने वाले इन तरह-तरह करों से सरकारी खजाने में भारी रक़म इकट्ठा होती है।

इसके अलावा सरकारी और निजी तेल कम्पनियों के मुनाफों की हिफाजत करना तो सरकारी धर्म ही है। सरकार भला उनपर बोझ क्यों डाले? बोझ उठाने के लिए आम उपभोक्ता हैं ही! चाहे उनकी लँगोटी ही क्यों न नीलाम हो जाये!

प्रधानमंत्री की असली चिन्ता

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की असली चिन्ता केवल 'विकास दर की स्थिरता' को लेकर है। उन्होंने पूरी साफगोई (बेहयाई) के साथ बयान दिया कि विकास दर की क़ीमत पर वह सब्सिडी का ख़र्च और नहीं बढ़ा सकते। उन्होंने यह बात पूँजीपतियों की एक सभा (एसोचैम की मीटिंग) में उन्हें दिलासा देने के लिए कही। उन्होंने यहभी कहा कि हमने एक सीमा तक समाज के कमज़ोर तबके के हितों की रक्षा

(पेज 2 पर जारी)

विकास के नाम पर ग़रीब किसानों से जीने का हक़ छीन लेने वाली

विनाशकारी मैत्रेय परियोजना के विरोध में किसानों का संघर्ष जारी है!

विशेष संवाददाता

देशी और विदेशी पूँजीपतियों ने मिलकर हमारे देश के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्ज़ा करने और सस्ते श्रम को लूटने का एक विनाशकारी अभियान चला रखा है। देश की सरकारें इन पूँजीपतियों की लठैत बनकर विरोध की हर आवाज को लाठी-गोली के ज़ोर से कुचलने पर आमादा हैं। कहीं बाँध और सड़क के नाम पर, कहीं उद्योग लगाने के नाम पर तो कहीं पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर, गरीब किसानों को उनकी जगह-ज़मीन और रोजी-रोटी के साधनों से बेदखल किया जा रहा है और पर्यावरण की भारी तबाही मचायी जा रही है। नर्मदा बाँध परियोजना, टिहरी बाँध परियोजना, उड़ीसा में पॉस्को परियोजना जैसी अनेक परियोजनाओं के साथ ही देश भर में सैकड़ों विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज़) बनाने की घोषणाएँ हो चुकी हैं। इन्हीं की तर्ज़ पर उत्तर प्रदेश में भी एक से बढ़कर एक विनाशकारी परियोजनाएँ घोषित हो चुकी हैं। कुशीनगर में मैत्रेय परियोजना ऐसी ही एक विनाशकारी परियोजना है जिसे साम-दाम-दण्ड भेद – हर कीमत पर लागू करने के लिए सरकार आमादा है। इस परियोजना के विरोध में इलाके के तमाम ग़रीब किसान जिस मज़बूती से डटकर खड़े हैं उसे देखते हुए यह आशंका बेबुनियाद नहीं है कि विकास के नाम पर यहाँ भी हुकूमत क़त्लेआम मचा सकती है। अगर सरकार इस परियोजना को लागू कराने में कामयाब हो गयी तो आगे महाविनाशक गंगा एक्सप्रेस-वे परियोजना को भी वह धड़ल्ले से लागू करेगी और इसे लागू होने से प्रदेश में तबाही का जो मंज़र रचा जायेगा उसका ख़ामियाज़ा आने वाली कई पीढ़ियाँ भुगतेंगी। विकास के नाम पर मची इस खूनी लूट ने समुद्री लुटेरों और अंग्रेजी हुकूमत की बर्बरताओं को भी मीलों पीछे छोड़ दिया है।

मैत्रेय परियोजना : विकास के नाम पर ठगी-बटमारी और मुनाफ़ा पीटने की आज़ादी!

वर्ष 2004 में जब मैत्रेय परियोजना की अधिसूचना गुपचुप तरीके से जारी हुई थी तब 'पिछड़ों के मसीहा' मुलायम सिंह यादव की सरकार थी। और आज 'दलितों-शोषितों की मसीहा' बहन मायावती की सरकार है। लेकिन कुशीनगर के हज़ारों किसानों की ज़िन्दगी पर आयी आफ़त जस की तस

(पेज 4 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

...अमीरज़ादों की ऐयाशियों का बोझ आम जनता पर

(पेज 1 से आगे)

की। इसका बोझ वे उद्योग जगत पर नहीं डाल सकते। वे अधिक से अधिक वित्तीय उपायों से कुछ राहत दिलाने की कोशिश कर सकते हैं। इससे अधिक कुछ नहीं!

मतलब बिल्कुल साफ़ है। प्रधानमंत्री महोदय को केवल उस विकास की चिन्ता है जिसमें टाटा-बिड़ला-अम्बानी जैसे मुट्ठी भर पूँजीपति मेहनतकश जनता का ख़ून चूसकर दुनिया के दस बड़े अमीरों में शामिल हो जाते हैं और "देश का नाम रौशन" करते हैं जबकि 78 प्रतिशत ग़रीब आबादी बीस रुपये या उससे भी कम की रोज़ाना आमदनी पर गुज़र-बसर करती है। प्रधानमंत्री महोदय के तथाकथित विकास के इस बुलडोज़र से औद्योगिक क्षेत्रों से लेकर देश के तमाम देहाती इलाकों में मज़दूरों-किसानों की ज़िन्दगी में भारी उखाड़-पछाड़ मची हुई है। मज़दूर पूँजीपतियों के लिए मुनाफा कमाने की मशीन बने हुए आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता के नये गुलाम बन चुके हैं। कहीं 'सेज' के नाम पर तो कहीं अन्य विनाशकारी परियोजनाओं के नाम पर गरीब किसानों को उनकी जगह-ज़मीन, रोज़ी-रोटी से उजाड़ा जा रहा है। प्रधानमंत्री जब फरमाते हैं कि वह विकास दर से छेड़छाड़ नहीं करना चाहते तो उसका मतलब यही होता है कि भूमण्डलीकरण के नाम पर पूँजीपतियों द्वारा देश के प्राकृतिक संसाधनों एवं श्रम की जो बेतहाशा लूट की जा रही है उसके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं होगी, चाहे इसकी जो भी क़ीमत मेहनतकश अवाम को चुकानी पड़े।

अमीरों की विलासिता के लिए तेल का आयात

देश में पेट्रोलियम पदार्थों की कुल ज़रूरतों का लगभग सत्तर प्रतिशत आज भी आयात करना पड़ता है। साठ वर्षों में देश अगर इस मामले में आत्मनिर्भर नहीं हो पाया तो इसका कारण इस देश की पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली और उस पर आधारित जीवन-प्रणाली है। जबसे भूमण्डलीकरण की नीतियाँ लागू हुई हैं तबसे हालत और बदतर हुई है। इन नीतियों के नतीज़े के तौर पर जो ऊपरी मुट्ठी भर उच्च मध्यवर्गीय अमीर तबका पैदा हुआ है वह अपनी अतिभोगवादी विलासितापूर्ण जीवन शैली के चलते पेट्रोलियम पदार्थों का सबसे बड़ा उपभेक्ता है। नये-नये मॉडल की कारें रखना उसकी सामाजिक हैसियत का प्रतीक है। पिछले डेढ़ दशकों में निजी कार वालों की इस जमात में भारी बढ़ोत्तरी हुई है। इसके साथ ही औसत मध्यवर्गीय आबादी भी, जरूरत हो न हो, 'स्टेटस सिम्बल' होने के नाते कर्ज़ लेकर भी कार व मोटरसाइकिलें खरीदना अपनी शान समझती है। सार्वजनिक परिवहन की लचर व्यवस्था और पूँजीवादी जीवन मूल्यों के कारण पेट्रोलियम पदार्थों का अन्धाधुन्ध उपभोग बढ़ रहा है। इस प्रवृत्ति पर रोक लगाने की बात पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली और संस्कृति के मौजूद रहते सम्भव नहीं। आखिर कार एवं मोटरसाइकिल बनाने वाली कम्पनियों का क्या होगा? इस तरह ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री के मुनाफों और अमीरजादों की ऐयाशियों का बोझ गरीब मेहनतकशों और आम मध्यवर्गीय जनता को उठाना पड़ रहा है।

मुनाफे की वेदी पर आत्मनिर्भरता

पेट्रोलियम पदार्थों के आयात पर निर्भरता का दूसरा बड़ा कारण यह है कि जब से पेट्रोलियम पदार्थों की खोज, शुद्धीकरण ओर वितरण का अधिकार रिलायंस जैसी निजी कम्पनियों को दिया गया है तबसे सार्वजनिक कम्पनियों ने खोज का काम बन्द कर रखा है। नयी नीतियों के लागू होने के बाद तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ओ.एन.जी.सी) ने कोई नयी खोज नहीं की है और निजी कम्पनियों की खोजों का फायदा भला उपभोक्ता को क्यों पहुँचेगा। सरकार के पास पेट्रोलियम पदार्थों के मामले में आत्मनिर्भरता कायम करने की कोई दूरगामी योजना ही नहीं है–न तो नई खोजों पर कोई ज़ोर है और न ही वैकल्पिक ईंधन विकसित करने पर। आत्मनिर्भरता को मुनाफ़े की बलिवेदी पर कुर्बान कर दिया गया है।

चौतरफ़ा मार

पेट्रोल, डीजल और रसोई गैस की कीमतों में भारी बढ़ोत्तरी से आम मध्यवर्गीय उपभोक्ता सीधे तौर पर तो प्रभावित होंगे ही लेकिन इसका ज़्यादा असर परोक्ष रूप से पड़ेगा। डीज़ल की क़ीमत बढ़ने से मालों की परिवहन लागत बढ़ेगी जिसके असर से सभी आवश्यक वस्तुओं की महंगाई और बढ़ेगी। रेल मंत्री ने लोकलुभावन चेहरा बनाये रखने की कवायद में भले ही फिलहाल किराया नहीं बढ़ाया है लेकिन यह फौरी राहत कब तक बनी रहेगी कहना मुश्किल है। कुछ राज्य सरकारों ने केन्द्र सरकार के ऊपर ठीकरा फोड़ते हुए (इसमें पं. बंगाल भी शामिल है) बसों के किराये बढ़ा भी दिये गये हैं और कुछ चुनावी मौसम गुज़र जाने तक इन्तज़ार कर लेना चाहते हैं। इस तरह इस बढ़ोत्तरी से आम मेहनतकश जनता पर चौतरफ़ा मार पड़ेगी। उसकी कमर और दुहरी हो जायेगी।

विरोध की चोंचलेबाज़ी

पेट्रोल, डीज़ल एवं रसोई गैस की कीमतों में बढ़ोत्तरी से भाजपा एवं अन्य विपक्षी चुनावबाज पार्टियों की बाँछें खिल उठी हैं। उनके हाथ बैठे-बिठाये एक चुनावी मुद्दा मिल गया है। कांग्रेस की अगुवाई वाली यूपीए सरकार को निशाना बनाते हुए वे आम आदमी का 'आँसू पोंछने के लिए' हाथों में रूमाल लिये सड़कों पर निकल पड़ी हैं। लेकिन जनता विरोध की इस नौटंकी को बख़ूबी समझ रही है। विरोध के इस पाखण्ड को केवल इसी तथ्य से समझा जा सकता है कि जब भाजपा की अगुवाई वाली राजग सरकार केन्द्र की गद्दी पर थी तो देश में पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतें और अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार की कीमतों का अनुपात आज से भी ज़्यादा था। उपभोक्ताओं को राहत पहुँचाने के लिए इस सरकार ने भी कुछ नहीं किया था। कीमत निर्धारण करने का वही फार्मूला अपनाया था जो पहले से चला आ रहा था और आज जिसे लागू किया जा रहा है। उस समय भी आयात शुल्कों, उत्पाद शुल्कों एवं राज्य करों का भारी बोझ आम उपभोक्ताओं के ऊपर ही डाला गया था। ज़ाहिर है कि आज कीमतों में बढ़ोत्तरी पर जो होहल्ला ये पार्टियाँ मचा रही हैं उसके पीछे आम आदमी की चिन्ता नहीं बल्कि आगामी लोकसभा चुनाव की चिन्ता है। उन्हें उम्मीद है कि जिस तरह प्याज की बढ़ी कीमतों ने एक बार शीला दीक्षित को रुलाया था उसी तरह इस बार कांग्रेस को तेल ले डूबेगा।

पेट्रोलियम पदार्थों से सरकारी खजाने में होने वाली भारी आय

पेट्रोलियम पदार्थों पर लगने वाले आयात शुल्कों, अत्पाद शुल्कों एवं राज्य करों से सरकारी ख़ज़ाने में भारी आय होती है। पेट्रोल और डीजल के आयात पर 7.5 प्रतिशत आयात शुल्क लगता है। अगर उत्पाद शुल्क सहित खुदरा बिक्री मूल्य में शामिल अन्य करों की बात करें तो यह क्रमश: पेट्रोल और डीज़ल पर 53 एवं 34 प्रतिशत होता है। मोटा-मोटी अनुमान की यह है कि अगर पेट्रोल 50 रुपये प्रति लीटर बिकता है तो लगभग 25 रुपये तेल कम्पनियों के पास और 25 रुपये सरकारी ख़ज़ाने में जाता है। वर्ष 2006-07 में केन्द्र सरकार के सरकारी खजाने में पेट्रोलियम उत्पादों की फुटकर बिक्री से आयात शुल्क के रूप में कुल 10,043 करोड़ रुपये और उत्पाद शुल्क के रूप में 56,821 करोड़ रुपये प्राप्त हुए। केन्द्र सरकार को प्राप्त होने वाले कुल उत्पाद शुल्कों का 2/5 हिस्सा अकेले पेट्रोलियम सेक्टर से प्राप्त होता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि सरकारी ख़ज़ाने में होने वाली इस भारी आय का बड़ा हिस्सा मंत्रालयों के खर्चों और मंत्रियों-अफसरों के विदेश दौरों पर खर्च होता है।

विश्व बाजार और तेल का खेल

तेल की कीमतों में इस भारी बढ़ोत्तरी के लिए विश्व पूँजीवादी तंत्र में मची मुनाफे की अन्धी लूट जिम्मेदार है। विश्व बाज़ार में कच्चे तेल की कीमतों को इस समय अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और रूस की तेल कम्पनियों के सिण्डीकेट तय करते हैं। इसके अलावा न्यूयॉर्क कमोडिटी एक्सचेंज (निमेक्स) में कच्चे तेल का वायदा कारोबार भी इस बढ़ोत्तरी के लिए जिम्मेदार है। साम्राज्यवादी देशों ने भारत और चीन जैसे तीसरी दुनिया के विकासमान पूँजीवादी देशों पर अपना दबाव बनाने की रणनीति के चलते तेल की कीमतों को बढ़ाया है जिससे उनकी अर्थव्यवस्थाएं लड़खड़ा जायें। ये साम्राज्यवादी देश भारतीय शासक वर्गों पर तेल की सब्सिडी खत्म करने के लिए भी दबाव बनाये हुए हैं जबकि खुद अपने देशों में वे भारी सब्सिडी दे रहे हैं। तेल उत्पादक बहुसंख्यक खाड़ी देश, जहाँ अभी भी राजशाहियाँ कायम हैं वे साम्राज्यवादियों से साँठ-गाँठ कर तेल के इस खेल को खेलते हैं और अकूत मुनाफा बटोरते हैं।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर (कम्युनिस्टों) और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ

दिल्ली सम्पर्क : बी-108, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-94 फ़ोन : 011-65976788

ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति रु. 3.00 वार्षिक रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वाघम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए ज़रूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन	5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त	3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की	3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ	10/-
समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति	12/-
क्यों माओवाद?	10/-
मई दिवस का इतिहास	5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल	12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी	10/-
पार्टी कार्य के बारे में	15/-
जनता के बीच पार्टी का काम	30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17/- रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ

दिल्ली के बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों के शोषण–उत्पीड़न की अन्तहीन कहानी

आशीष

दिल्ली असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों का शहर है। यहाँ असंगठित मज़दूरों की संख्या लाखों में है। तमाम गाड़ियों के स्पेयर पार्ट बनाने से लेकर, कुकर के ढक्कर बनाने, बिन्दी, पेण्ट कंबल आदि बनाने का काम यहाँ पर असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों द्वारा ही किया जा रहा है। बताने की ज़रूरत नहीं है कि इन मज़दूरों के बीच ठेका के आधार पर और पीस रेट पर काम कराया जाता है। न कहीं न्यूनतम मज़दूरी का कानून लागू होता है और न ही काम के घण्टे आठ होने का कानून। हर जगह ठेकेदार और मालिक पैसे के बल पर लेबर इंस्पेक्टर से लेकर पुलिस तक को अपने काबू में रखते हैं। मज़दूर महिलाओं के साथ बदतमीज़ी होना आम बात है। बच्चों के श्रम का शोषण लगभग हर जगह ही होता है।

दिल्ली का एक ऐसा ही इलाका है करावलनगर। यह एक विशाल औद्योगिक क्षेत्र है। यहाँ पर एक व्यापक रिहायशी इलाका भी है। इस रिहायशी इलाके में भारी मज़दूर आबादी किराए पर रहती है। इन मकानों के मालिक इस इलाके के पुराने गुर्जर और जाट हैं। इन मकान मालिकों की ज़मीनें इस इलाके में उस समय से थीं जब अभी दिल्ली का शहरी विकास यहाँ नहीं पहुँचा था। करावलनगर के भीतर कई छोटी–छोटी मज़दूर बस्तियाँ और निम्नमध्यमवर्गीय कालोनियाँ हैं। ऐसी ही एक मज़दूर बस्ती है प्रकाश विहार।

प्रकाश विहार में कई प्रकार के ठेका मज़दूर रहते हैं जो अलग–अलग पेशों में लगे हुए हैं। मिसाल के तौर पर कुछ लोग कुकर बनाने की फैक्ट्री में काम करते हैं, कुछ दूर–दराज़ के औद्योगिक क्षेत्रों जैसे नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, आदि में काम करने जाते हैं। इनमें हर प्रकार के मज़दूर हैं – कुशल, अकुशल, अर्द्धकुशल। लेकिन प्रकाश विहार में एक बहुत बड़ी आबादी है बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों की। बादाम तोड़ने वाले गोदामों में काम करने वाले करीब 10 हज़ार मज़दूर परिवार इस इलाके में रहते हैं। इस रिपोर्ट में हम इन मज़दूरों के काम करने के हालात और इस उद्योग का जायज़ा लेंगे।

एशिया की सबसे बड़ी बादाम मण्डी दिल्ली में खारी बावली में स्थित है। यहाँ पर ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका से बादाम वाया मुम्बई आता है। खारी बावली में बादाम के तमाम बड़े व्यापारी और एजेण्ट मौजूद हैं। इन व्यापारियों और एजेण्टों के माध्यम से यह बादाम करावलनगर, घोण्डा, व बुराड़ी के बादाम तोड़ने वाले गोदामों को चलाने वाले ठेकेदारों के पास पहुँचता है। अधिकांश ठेकेदार पहले इन बड़े व्यापारियों और एजेण्टों के ही मुलाज़िम थे। जिन्होंने बाद में बादाम तुड़वाने वाले ठेकेदारों के रूप में काम शुरू कर दिया। करावलनगर के प्रकाश विहार, भगतसिंह कालोनी और सोमवार बाज़ार के इलाके में बादाम के करीब 35–40 गोदाम हैं। बादाम तुड़वाने का काम इन गोदामों के करवाने के अतिरिक्त ठेकेदार मज़दूरों को घर पर बादाम तोड़ने के लिए बोरियाँ भी देते हैं। यह काम चाहे गोदाम में करवाया जाय या घर पर, दोनों ही सूरत में मज़दूरों को भुगतान पीस रेट के अनुसार होता है। यानी, मज़दूरों को भुगतान प्रति बोरी के अनुसार किया जाता है। बादाम की एक बोरी का वज़न करीब 23 किलोग्राम होता है। बादाम की कई किस्में आती हैं और इसलिए बोरी से निकलने वाली गिरी (माल) की मात्रा भी बादाम की किस्म के अनुसार अलग–अलग होती है। आम तौर पर एक बोरी से 15–17 किग्रा बिकाऊ बादाम निकलता है। अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में बादाम की कीमत 350–400 रुपये प्रति किलोग्राम होती है। यानी एक बोरी 6500 रुपये से 7000 रुपये के करीब में बिकती है। जबकि बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों को प्रति बोरी 35 से 40 रुपये ही मिलते हैं। घर पर ले जाकर बादाम तोड़ने की सूरत में कहीं–कहीं यह राशि मात्र 33 रुपये है। एक मज़दूर एक दिन में औसतन 2 बोरी बादाम तोड़ सकता है। यानी, बादाम तोड़ने वाले एक मज़दूर की दिहाड़ी करीब 65 से 80 रुपये के बीच होती है।

एक बोरी बादाम पर व्यापारी को होने वाला मुनाफ़ा करीब 6500 से 7000 रुपये होता है, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं। बादाम तुड़वाने के गोदाम चलाने वाले ठेकेदारों को एक बोरी पर कितना मिलता है, इसकी ठीक–ठीक जानकारी सर्वे टीम को प्राप्त नहीं हो सकी है। लेकिन जितनी सूचनाएँ मिली हैं, उसके अनुसार एक बोरी पर ठेकेदार को 200 से 300 रुपये तक मिलते हैं। जब माँग पूरे ज़ोरों पर होती है उस समय एक ठेकेदार के गोदाम में प्रति दिन 150 से 170 बोरियाँ उतरती हैं। यानी उसे प्रतिदिन का कुल लाभ होता है करीब 40,000 रुपये। महीने के 15 दिन काम आने की सूरत में उसकी मासिक कमाई बनती है करीब 6 लाख रुपये। मज़दूरों को दिया जाने वाला कुल मेहनताना बैठता है करीब एक लाख रुपये। तमाम अन्य खर्च, जैसे बिजली, पुलिस को हर माह पहुँचने वाली रकम, मेंटेनेंस पर होने वाला खर्च अगर एक लाख रुपये प्रति माह होता हो, तो हर माह होने वाला शुद्ध मुनाफा हुआ 4 लाख रुपये। मज़दूरों को ठेकेदार बताते हैं कि उन्हें प्रति बोरी मात्र 50 रुपये मिलते हैं। लेकिन उनकी बढ़ती सम्पत्ति और समृद्धि से साफ़ जाहिर होता है कि उनका मुनाफ़ा इतना कम हो ही नहीं सकता।

ठेकेदारों की जिस आय की अभी हमने बात की है वह तो सिर्फ़ उसे मालिक से प्रति बोरी होने वाले भुगतान से होता है। इसके अतिरिक्त और तमाम रास्ते हैं जिनसे ठेकेदार कमाई करते हैं। मिसाल के तौर पर, ठेकेदार बादाम को भिगाकर उसका वज़न बढ़ा देते हैं और जितना वज़न भिगोए जाने की वजह से बढ़ता है उतना बादाम बोरी में निकाल कर बेच देते हैं। हर बोरी से 200 से 300 ग्राम बादाम बचाया जाता है। प्रतिदिन 150 बोरी बादाम टूटने की सूरत में कुल बचाया गया बादाम हुआ करीब 35–37 किलोग्राम। और अगर गोदाम महीने के 15 दिन सक्रिय रहता है तो बचाए गए बादाम की मात्रा हुई 525 किलोग्राम। यदि एक किलोग्राम बादाम 350 रुपये में बिकता है तो इस बचाए गए बादाम से होने वाली आय हुई करीब एक लाख 83 हज़ार रुपये। इसके अतिरिक्त, बादाम के छिलकों को ईंधन के रूप में बेचकर भी ठेकेदार कमाई करता है। तो एक तरह से ठेकेदार की महीने की कमाई कम से कम 6 लाख रुपये होती है।

यह तो कमाई करने के महज़ कुछ मानक तरीके हैं। इसके अतिरिक्त, जालसाज़ी और चार सौ बीसी करके भी बादाम के ठेकेदार अच्छी–खासी कमाई करते हैं। मिसाल के तौर पर, ट्रक में जा रहे बादाम में टूटा–फूटा नीचे दबाकर और फ्रेश माल ऊपर रखकर। यह पूरा धंधा इतना लाभदायक है कि पिछले 8–10 वर्षों के भीतर इसका ज़बर्दस्त विस्तार हुआ है। ठेकेदारों और मालिकों की कमाई बेहिसाब होती है जबकि मज़दूरों को पूरे मुनाफ़े का जूठन भी नसीब नहीं होता है। बादाम के व्यापारियों की कमाई का तो अन्दाज़ा लगाना ही बहुत मुश्किल है। खारी बावली में बैठने वाले इन व्यापारियों को अगर अरबपति कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ये सीधे अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार के लिए काम करते हैं और इससे ज़बर्दस्त मुनाफ़ा कमाते हैं। इनमें से कई ऐसे व्यापारी भी हैं जिनके खुद के अपने फार्म अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में हैं।

वहीं अगर दूसरी तरफ बादाम के इन गोदामों में काम करने वाले मज़दूरों के हालात पर निगाह दौड़ाई जाय तो पता चलता है कि इन मज़दूरों के लिए काम करने की स्थितियाँ आदिम हैं। कई गोदाम ठेकेदारों के मकान के तलघर में चलते हैं। इन अन्धेरे तलघरों में काम करना अपने आप में एक बेहद थकाऊ और जटिल काम होता है। किसी भी किस्म के श्रम कानून का यहाँ पर पालन नहीं होता है। न तो न्यूनतम मज़दूरी का कानून लागू होता है और न ही काम के घण्टे आठ होते हैं। 12–13 घण्टे काम कराया जाना आम बात है। बादाम को तोड़ने के पहले उन्हें तेज़ाब में भिगोया जाता है और फिर सुखाया जाता है। मज़दूर इन बादामों को नाखून और दाँतों का इस्तेमाल करके तोड़ते हैं। नतीजा यह होता है कि उन्हें तरह–तरह की बीमारियाँ होती हैं। धूल–गर्द के कारण मज़दूरों के बीच दमा और टी.बी. आम बीमारियाँ हैं। तेज़ाब के असर से दाँत और नाखून जल्दी ही गलने लग जाते हैं। स्त्रियों के बीच खून की कमी आम है। बादाम तोड़ने के काम में बाल श्रम बड़े पैमाने पर कराया जाता है। एक अनुमान के मुताबिक इस उद्योग में करीब 8 हज़ार बच्चे लगे हुए हैं। इन बच्चों को गम्भीर बीमारियाँ लग जाती हैं और नौजवानी की उम्र आते–आते वे अपने दाँत और नाखून गवाँ चुके होते हैं, उन्हें पेट की तमाम बीमारियाँ लग चुकी होती हैं, साँस की बीमारियाँ तो उन्हें उसी समय लग जाती हैं जब उनकी माँएँ उन्हें गोद में लेकर काम करती हैं। बादाम की गर्द उनकी नाक और मुँह के रास्ते फेफड़ों में जाती है और उसे जाम कर देती है। अगर इस पूरे इलाके में कोई घूमे तो चारों तरफ बड़ी तादाद में उसे कुपोषित और बीमार बच्चे नज़र आ जाएँगे। इन बच्चों का कोई भी भविष्य नहीं होता और अन्ततः वे ठेकेदारों की तिजोरियाँ भरते–भरते जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं और असमय काल के गर्त में समा जाते हैं।

स्त्रियों को कई प्रकार के शोषण–उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। एक तो उन्हें आर्थिक शोषण का शिकार होना पड़ता है, और दूसरी ओर उन्हें ठेकेदारों के हाथों यौन उत्पीड़न और छेड़खानी का शिकार भी होना पड़ता है। कई बार उनकी मज़दूरी मार ली जाती है। इस पूरे शोषण के ख़िलाफ़ कहीं कोई सुनवाई नहीं होती। कदम–कदम पर महिला मज़दूरों को अपमान और बेइज्जती झेलनी पड़ती है। अगर कोई पुलिस के पास शिकायत लेकर जाता है तो उसे मारकर भगा दिया जाता है और वापस आने पर ठेकेदार और उसके गुण्डों के हाथों भी पिटना पड़ता है। इस अपमान के ख़िलाफ़ भयंकर गुस्सा होने के बावजूद संगठित और एकजुट न होने के कारण मज़दूर कुछ नहीं कर पाते। पुलिस और थाने को ठेकेदार अपनी जेब में रखते हैं।

इनमें से अधिकांश ठेकेदारों को किसी–न–किसी पार्टी का संरक्षण प्राप्त है और कुछ ठेकेदार बाकायदा सक्रिय राजनीति में शिरकत करते हैं। इन लोगों के ऊपर तक राजनीतिक सम्बन्ध होते हैं जिसका इस्तेमाल ये पुलिस को अपनी जेब में करने के लिए करते हैं। स्थानीय निगम पार्षद और विधायक को भी इन्होंने खरीद रखा है। ये विधायक–पार्षद भी इनके साथ रहने में ही भलाई समझते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकांश ठेकेदार पहले खुद बड़े बादाम व्यापारी के यहाँ छोटा–मोटा काम करते हुए जॉबर बने और नेटवर्क के जरिये अपने गाँवों से मज़दूरों को लेकर दिल्ली आए। नतीजा यह हुआ कि इन ठेकेदारों और उनके मज़दूरों के बीच वर्ग अन्तरविरोध शुरुआती दौर में स्पष्ट नहीं था और उनके बीच एक सामन्ती किस्म का रिश्ता था। मज़दूर ठेकेदारों को अपने रोज़गारदाता और संरक्षक के रूप में देखते थे और ये ठेकेदार इस भ्रम को बनाए रखने के लिए बीच–बीच में उनका मन बहलाने वाले कुछ कार्यक्रम कर देते थे। मिसाल के तौर पर छठ–पूजा का आयोजन, बिरहा का आयोजन, मेला आदि लगाकर मज़दूरों को अपने प्रति नर्म बनाना आदि। लेकिन जब शोषण इतना भयंकर हो तो यह स्थिति बहुत देर तक नहीं बनी रह सकती। हुआ भी ऐसा ही। अधिकांश मज़दूर बिहार, उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल और राजस्थान के हैं। उनके ठेकेदार भी इन्हीं स्थानों से हैं। पिछले वर्ष ही मज़दूरों ने एक आन्दोलन किया और प्रति बोरा मेहनताना को 30 रुपये से बढ़ाकर 40 रुपये करवा लिया। जाहिर है कि यह बहुत मामूली वृद्धि थी और महँगाई के इस ज़माने में इस बढ़ोत्तरी का कोई खास मतलब नहीं था। लेकिन फिर भी यह मज़दूरों के संघर्ष की एक आंशिक विजय थी। दरअसल यह आन्दोलन और बड़ी जीतें हासिल कर सकता था लेकिन नेतृत्व के नाकारेपन के चलते यह आगे नहीं जा पाया। लेकिन इतना ज़रूर हुआ कि मज़दूरों और ठेकेदारों के बीच का वर्ग अन्तरविरोध साफ हुआ और मज़दूरों की चेतना उन्नत हुई।

पिछले कुछ समय से मज़दूरों के बीच फिर से उभार की एक स्थिति पैदा हो रही है। मज़दूरों के लिए महँगाई के इस दौर में 40 रुपये प्रति बोरे की दर पर गुज़ारा करना मुश्किल हो रहा है। महिलाओं और बच्चों पर ठेकेदारों के अत्याचार के ख़िलाफ़ भी मज़दूरों में भयंकर गुस्सा है। पिछले कुछ समय से मज़दूरों के आन्दोलन में नौजवान भारत सभा की करावलनगर इकाई ने हस्तक्षेप किया है। उनके बीच नौजवान भारत सभा ने हाल ही में ठेका मज़दूरों के अधिकारों के लेकर एक प्रचार अभियान चलाया और बेहड़ों और लॉजों में बैठकों का एक सिलसिला चलाया। मज़दूरों की एक व्यापक बैठक 7 जून को आयोजित की गई जिसमें आन्दोलन सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण निर्णय लिए गये और मज़दूरों का माँगपत्रक तैयार किया गया। मज़दूरों के बीच अभी जो उथल–पुथल की स्थिति है उससे साफ लग रहा है कि आने वाले समय में मज़दूरों का गुस्सा एक व्यापक आन्दोलन की शक्ल ले सकता है।

बादाम के गोदामों में अभी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई है। काम अभी मुख्यत: और मूलत: हाथों से ही किया जाता है। इक्की–दुक्की जगहें ही हैं जहाँ कुछ मशीनें लगी हैं। लेकिन आने वाले समय में रुझान मशीनीकरण की तरफ ही होगा। आज जो आदिम स्थितियाँ इस उद्योग में हैं, वे कल नहीं रहेंगी। इस उद्योग के मशीनीकरण के साथ इसमें और अधिक व्यवस्था आएगी। लेकिन यह व्यवस्था लूटने के तरीके में ज़्यादा होगी, और मज़दूरों की जीवन स्थितियों में कम। अगर बादाम तोड़ने वाले मज़दूर अभी से अपनी माँगों के लिए संघर्ष नहीं करेंगे तो आने वाले समय में उनके लिए स्थितियाँ बहुत कठिन होंगी। आज उन्हें सबसे बुनियादी हक़ भी नहीं हासिल हैं और इन अधिकारों के लिए अगर एक व्यापक आन्दोलन खड़ा

(पेज 4 पर जारी)

लुधियाना ब्वायलर विस्फोट हादसे के विरोध में

दमन विरोधी कनवेंशन, साझा संघर्ष का ऐलान

बीते 21 अप्रैल 2008 को लुधियाना की महावीर कालोनी स्थित वीर गारमेंट्स नामक डाइंग फैक्ट्री में हुए ब्वॉयलर विस्फोट हादसे के बाद शुरू हुए संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए पिछले 3 जून को लुधियाना के दर्जनों जनवादी, इंसाफपसंद व संघर्षशील संगठनों का दमन विरोधी साझा कनवेन्शन हुआ। लुधियाना के चतर सिंह की पार्क में हुए इस कनवेन्शन में इन संगठनों के सक्रिय कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। कनवेनशन को संबोधन करने वाले सभी वक्ताओं ने मालिक–पुलिस द्वारा रची गई उस साजिश की जोरदार शब्दों में निंदा की जिसके तहत हादसे के बाद मामले को रफा–दफा करने की कोशिश की गई, राहत कार्यों को शुरू करने में 40 घंटे की देरी की गई, फिर अपनी ही पहलकदमी पर मलबा उठाने की कोशिश करने वाले लोगों की मालिक व पुलिस बुरी तरह पिटाई की। उनकी अगुवाई कर रहे नौजवान भारत सभा के राजविंदर, लखविंदर व परमिंदर, वहाँ लोगों को पानी पिलाने वाले मज़दूर गौरीशंकर समेत 50 लोगों पर इरादातन कत्ल व डकैती जैसे गंभीर, झूठे पुलिस केस दर्ज किये गए।

कनवेन्शन में यह बात उभरकर सामने आयी कि लुधियाना के फैक्ट्री मज़दूरों को किसी प्रकार के कोई जनवादी अधिकार प्राप्त नहीं हैं। उनकी लूट दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। ऐसे में उनके द्वारा अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाना लाजिमी है। लेकिन फैक्ट्री मालिक गुण्डों व पुलिस की मदद के जरिए जोर–जुल्म–दमन का इस्तेमाल कर ऐसी हर आवाज को दबा देना चाहते हैं। पूँजीवादी टीवी चैनल, अखबार व पत्रिकाओं में मदद के जरिए जोर–जुल्म–दमन की घटनाओं को कभी कोई स्थान नहीं मिलता। यह सब कुछ एक साजिश के तहत ही किया जा रहा है।

कुछ समय पहले ही बजाज संस के मज़दूर नेता बलिराम पर मालिक के गुण्डों द्वारा हमला हुआ था। एक अखबार में सिर्फ इतना छपा - छत पर सो रहे एक प्रवासी मज़दूर पर कुछ गुण्डों ने हमला किया। सभी ने एकमत होकर इस बात पर सहमति जताई कि मज़दूरों के संघर्षों को दबाने की कोशिश में हुक्मरान वर्गों द्वारा चलाई जा रही दमन नीति का मुकाबला करने के लिए सभी जनवादी-इंसाफपसन्द संगठनों को एकजुट होना चाहिए।

कनवेन्शन में सर्वसम्मति के साथ जो प्रस्ताव पारित किए गए उनमें लुधियाना प्रशासन से यह मांग की गई कि इस ब्वायलर विस्फोट हादसे की उच्चस्तरीय जांच की जाए और पीड़ित मजदूरों के परिवारों का पता लगा कर उनके साथ इंसाफ किया जाए, राजविंदर, लखविंदर, परमिंदर व गौरी शंकर सहित अन्य लोगों पर दर्ज किए गए झूठे पुलिस केसों को रद्द किया जाये, दोषी मालिक व पुलिस मुलाजिमों को सजा दी जाए। इसके साथ ही एक प्रस्ताव में यह मांग की गई कि लुधियाना में पिछले वर्षों में चले संघर्षों (साइकिल इण्डस्ट्री, डीएमसी आदि) के दौरान संघर्षशील लोगों पर दर्ज झूठे पुलिस केस रद्द किये जायें और और बजाज संस के मजदूर नेता बलिराम पर हमला करने के दोषी फैक्ट्री मालिक व गुण्डों पर कड़ी कार्रवाई की जाए। कनवेन्शन में पारित एक अन्य प्रस्ताव मे पंजाब सरकार से यह मांग की गई कि पंजाब के अलग–अलग हिस्सों में चल रहे मेहनतकश वर्गों के संघर्षों को दबाने के लिए चलाई जा रही दमनकारी नीति को बंद किया जाए।

कनवेन्शन को सबसे पहले नौज़वान भारत सभा, पंजाब के संयोजक राजविंदर ने संबोधित किया। वे 24 मई को लगभग एक महीने जेल में रहने के बाद जमानत पर रिहा होकर आये हैं। उन्होंने विस्तार के साथ घटना के बारे में बताया कि किस प्रकार मालिक व पुलिस ने मामले को रफा–दफा करने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि ब्वायलर विस्फोट की यह कोई पहली घटना नहीं है। ऐसी दुर्घटनाएँ अक्सर ही होती रहती हैं। लेकिन किसी को कानोंकान खबर नहीं होने दी जाती। पूँजीपतियों के अखबार चुप्पी साध लेते हैं। इसबार भी अगर नौजवान भारत सभा व बिगुल मजदूर दस्ता के सदस्य मौके पर दखलंदाजी न करते तो यह घटना भी दबा दी जाती। उनके अलावा मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन (सेक्टरी महेंद्र) के प्रधान हरजिंदर सिंह, मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्स यूनियन (विजय नारायण)के प्रधान विजय नारायण, लोक एकता संगठन क नेता गल्लर चौहान, आल इंडिया सेंटर आफ ट्रेड यूनियंस (ऐक्टू) उके नेता बाल किशन, डेमोक्रेटिक इंम्पलाइज फ्रंट के नेता रमनजीत सिंह, ग्रामीण मज़दूर यूनियन के नेता बलदेव सिंह बिल्लू और मलकीत सिंह, बी.एस.एन.एल. के नेता बलबीर सिंह, लोक मोर्चा पंजाब क नेता कस्तूरी लाल, भारतीय किसान यूनियन उगराहाँ के नेता सौदागर सिंह, पंजाब निर्माण मजदूर यूनियन के नेता हरदेव सिंह सनेत, टेक्निकल सर्विसेज यूनियन (सब-अर्बन सर्किल, लुधियाना) के नेता चमकौर सिंह, टेक्निकल सर्विसेज यूनियन (सब-अर्बन सर्कल समराला) के नेता अमरीक सिंह, मेडिकल प्रैक्टिशनर्स एसोसियेशन के नेता डा. सुरजीत सिंह आदि ने संबोधित किया।

मैत्रेय परियोजना के विरोध में किसानों का संघर्ष...

(पेज 1 से आगे)

बनी हुई है। मैत्रेय परियोजना के अन्तर्गत न तो कोई उद्योग खुल रहा है और न ही कोई स्कूल–अस्पताल या अन्य कोई उत्पादक गतिविधि, जिसमें लोगों को रोजगार मिल सके । केवल पर्यटन को बढ़ावा देने के नाम पर गौतम बुद्ध की 500 फुट ऊँची एक कांसे की प्रतिमा लगायी जायेगी। इसके अलावा केवल होटल और रेस्तरां खुलेंगे। यह सब 'विकास' भी सरकार नहीं करेगी। मैत्रेय ट्रस्ट नामक एक भारत- जापानी एन. जी.ओ. इस परियोजना की सूत्रधार है जिसका स्थानीय कार्यालय इसके स्थानीय कर्ता-धर्ता अनूपवीर चोपड़ा का घर 'कान्ता हाउस' है। सरकार का काम केवल इस संस्था के लिए हरमुमकिन तरीके से किसानों की ज़मीन छीनना है। इस परियोजना के पहले चरण में कुल सात गाँवों की 660.57 एकड़ ज़मीन का अधिग्रहण किया जायेगा। जिससे लगभग 2000 किसान परिवार उजाड़ दिये जायेंगे। ये गाँव हैं – सिसवाँ महन्थ, सबया, बिन्दवलिया, कसया, डुमरी, अनरुधवा और बेलवा पलकधारी सिंह (बनवारी टोला)। शुरू में सरकार ने उनकी जमीनों का मुआवजा बेहद मामूली घोषित किया था – साधारण ज़मीन का केवल छह हजार रुपया कट्ठा और सड़क किनारे की ज़मीन का भी केवल सोलह हजार रुपये कट्ठा। पुनर्वास की कोई योजना नहीं, जबकि ज़्यादातर किसान पिछड़ी और दलित जातियों के हैं जिनके पास कुछ कट्ठे के अलावा जीने का कोई दूसरा साधन नहीं है। लेकिन किसानों के ज़बर्दस्त विरोध के बाद अभी पिछले हफ्ते दस गुना बढ़ा देने की ख़बर दो स्थानीय अख़बारों में प्रकाशित करवायी। यह किसानों के आन्दोलन को तोड़ने की चाल है। लेकिन किसानों का कहना है कि मुआवज़ा चाहे जितना बढ़ जाये वे वे अपनी ज़मीन नहीं देंगे। अगर सरकार ने ज़ोर-जबर्दस्ती करने की कोशिश की तो कुशीनगर नन्दीग्राम बन जायेगा। यह किसानों का ऐलान है। उनका ऐलान है कि वे जान दे देंगे लेकिन अपनी ज़मीन नहीं देंगे क्योंकि वही उनकी रोज़ी-रोटी का सहारा है।

मैत्रेय परियोजना के विरोध में भूमि बचाओ संघर्ष समिति के बैनर तले अब तक धरना-प्रदर्शन ही नहीं एक महीने लम्बी भूख हड़ताल भी हो चुकी है। किसान सरकारी नुमाइन्दों और चुनावी नेताओं के झूठे आश्वासनों से पूरी तरह आजिज़ आ चुके हैं। विगत 7-8 जून 2008 को सिसवाँ महन्थ गाँव में आयोजित जनान्दोलनों के राष्ट्रीय समन्वय के सातवें सम्मेलन के आख़िरी सत्र में रखी गयी जनसभा को सम्बोधित करते हुए स्थानीय सपा सांसद मोहन सिंह, कांग्रेस सांसद सन्दीप दीक्षित और जनता दल (यू) के राज्य सभा सदस्य अली अनवर भी अपने लच्छेदार भाषणों में इस बात का रोना रोते रहे कि उनकी पार्टियों में नीतियाँ बनाने की हैसियत रखने वाले नेता उनके तवज्जो नहीं देते। वे बेबस हैं। किसानों का धरना अनवरत जारी है। उनके आन्दोलन को कई स्थानीय क्रान्तिकारी जन संगठन सक्रिय समर्थ दे रहे हैं। दिशा छात्र संगठन और नौजवान भारत सभा के कार्यकर्ताओं ने आन्दोलन के समर्थन में न केवल गोरखपुर शहर में साइकिल जुलूस निकालकर व्यापक पर्चा वितरण किया बल्कि 50 किमी. की ्री साइकिल से तय कर कुशीनगर जाकर समर्थन दिया। रास्ते भर उन्होंने नुक्कड़ सभाएँ करते हुए पर्चा वितरण किया।

इस परियोजना को पास करवाने में झूठ-फरेब, जालसाजी सबका सहारा लिया गया। मैत्रेय ट्रस्ट द्वारा सरकार को भेजे गये प्रस्ताव में बेहद उर्वर और कृषियोग्य ज़मीन के बारे में बताया गया है कि वह ऊबड़-खाबड़ और बंजर है और भूमि अधिग्रहण के लिए किसान तैयार हैं।

कुशीनगर के किसानों ने भी अपने जुझारू प्रतिरोध से विकास के उस पूँजीवादी मॉडल को सवालों के घेरे में खड़ा कर दिया है जिसमें मेहनतकश जनता की तबाही-बर्बादी की कीमत पर मुट्‌ठीभर पूँजीपतियों-मुनाफ़ाखोरों की तिज़ोरियाँ भरती हैं। मैत्रेय परियोजना से किस तरह का विकास होगा इसके बारे में दोनों सरकारों के मंत्री-नेता और अफसर किसानों को भरमाने के अलावा अब तक कुछ नहीं बता सके हैं।

परियोजना से 'विकास' की जो तस्वीर उभरेगी उसकी कल्पना सहज ही की जा सकी है। तस्वीर यह होगी कि उजाड़े गये किसान परिवारों के नंग-धड़ंग बच्चे पर्यटकों के पीछे-पीछे हाथ पसारे भागते फिरेंगे और नौजवान उनकी तरह-तरह की 'सेवा-टहल' में जुटे रहेंगे। होटल-रेस्तराँ और शापिंग माल में दुकानें खोलने वाले बड़े दुकानदार मालामाल होते जायेंगे और फ़िलहाल मौजूद छोटे दुकानदार तबाह। बुद्ध की गगनचुम्बी प्रतिमा के साये में तरह-तरह के दलाल घूमते फिरेंगे और व्यभिचार के नये-नये अड्डे बनेंगे। गरीबों की बेबसी-लाचारी, और अपमान का दिल-दहला देने वाला मंजर पसरा होगा।

इस परियोजना के मूल प्रस्ताव में न तो कोई स्कूल था न अस्पताल। लेकिन जब किसानों का विरोध शुरू हुआ तो एक विश्वविद्यालय और एक मेडिकल कालेज की घोषणा करके "विकास" का झुनझुना पकड़ा दिया गया । बाद में सरकार ने यह भी घोषणा कर दी कि समूची परियोजना लगभग 250 गाँवों को अपने दायरे में समेटेगी जिसमें अन्तरराष्ट्रीय हवाई अड्डा भी बनेगा। यह तबाही का कितना बड़ा मंजर होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। मूल परियोजना में यह भी शर्त है कि अगले 100 वर्षों तक 20 किमी. के दायरे में कोई उद्योग नहीं लगाया जा सकता क्योंकि इससे बुद्ध की प्रतिमा को नुकसान पहुँचेगा।

दिल्ली के बादाम तोड़ने वाले मज़दूर...

(पेज 3 से आगे)

किया जाय तो निश्चित रूप से जीत हासिल की जा सकती है। पहले उन्हें अपने कानूनी अधिकारों के लिए लड़ना होगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह लड़ाई तभी लड़ी जा सकती है जब वे संगठित हों और एकजुट होकर लड़ें। अकेले जाने पर कोई पुलिस–थाना उनकी सुनवाई नहीं करता। एकजुट होकर संघर्ष करने पर ऐसी स्थिति नहीं होगी। ऐसे में बादाम मज़दूरों को अपनी पेशागत यूनियन बनाने की आवश्यकता होगी। जब तक बादाम मज़दूरों की अपनी यूनियन नहीं होती तब तक वे अपने आर्थिक संघर्षों को कारगर ढंग से मंज़िल तक नहीं पहुँचा सकते। एक छोटी लड़ाई लड़ने के लिए भी उन्हें संगठन की आवश्यकता होगी। अभी बादाम मज़दूर पूरी तरह असंगठित हैं। इसलिए सबसे पहले इस दिशा में प्रयास करना होगा कि इन मज़दूरों की एक अपनी यूनियन हो जो किसी चुनावबाज़ पार्टी से सम्बद्ध हुए बगैर सच्चे मायने में उनकी नुमाइन्दगी करे। इसके बाद मज़दूरों को तमाम कानूनी कदम उठाने होंगे। मिसाल के तौर पर, उन्हें अपने माँग–पत्रक के साथ श्रम आयुक्त से मिलना होगा और उन्हें बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों की जीवन–स्थितियों व कार्य–स्थितियों से और साथ ही श्रम कानूनों के गम्भीर उल्लंघन से परिचित कराना होगा और जाँच और कार्रवाई की माँग करनी होगी। हालाँकि, ऐसा नहीं है कि श्रम आयुक्त को इसके बारे में कुछ पता नहीं होगा। लेकिन अब तक उन पर संगठित रूप से कोई दबाव ही नहीं डाला गया है। इसके बाद हम हड़ताल जैसे कदम के बारे में भी सोच सकते हैं और हमें सोचना ही होगा। बादाम तोड़ने वाले मज़दूरों को अभी संगठन की यात्रा तय करनी है, कानूनी लड़ाई का मोर्चा भी खोल देना है। साथ ही, अपने सबसे कारगर हथियार, यानी हड़ताल का भी कुशलता से और सही वक्त पर इस्तेमाल करना होगा। केवल तभी उनकी लड़ाई सफल हो सकती है और उनकी जीवन स्थितियों में कुछ बदलाव आ सकता है।

नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास

(दूसरी किस्त)

आगे बढ़ता जनयुद्ध और सीमाएँ

नेपाल में जारी जनयुद्ध की बारह वर्ष की अवधि के दौरान ने.क.पा. (माओवादी) ने राजनीतिक और सामरिक मामलों में क्रमशः ज़्यादा से ज़्यादा परिपक्वता हासिल की। अपनी सोच में मौजूद सैन्यवादी "वामपन्थी" विचलन से भी उसने काफ़ी हद तक छुटकारा पा लिया और जो जनयुद्ध कमोबेश पेरू के माओवादियों के जनयुद्ध के रास्ते के दुहराव के रूप में शुरू हुआ था, वह आगे चलकर अपनी नेपाली विशिष्टताओं के साथ विकसित हुआ। नेपाल के माओवादियों ने युद्ध में कम से कम नुक़सान उठाकर जीत हासिल करने तथा रणकौशल के मामले में ज़्यादा से ज़्यादा लचीलापन अपनाने में महारत हासिल कर ली। इस प्रक्रिया में उनकी राजनीतिक अवस्थितियों में भी काफ़ी बदलाव आये और ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के साथ उनके अधिकांश बुनियादी मतभेद हल हो गये। इस तरह क्रान्तिकारी वाम एकता का एक नया आधार होने तैयार होने लगा, हालाँकि ने.क.पा. (माओवादी) की नयी अवस्थितियों में दक्षिणपन्थी व्यवहारवाद ('प्रैग्मेटिज़्म') की एक नयी प्रवृत्ति भी उभरकर सामने आयी जिस पर बहस-मुबाहसे का सिलसिला एकता की प्रक्रिया के आगे बढ़ने के साथ-साथ आज भी जारी है। एकता और मतभेद के इन बिन्दुओं की हम आगे चर्चा करेंगे।

जनयुद्ध की शुरुआत रोल्पा, रुकुम और जाजरकोट नामक मध्य-पश्चिम नेपाल के तीन दुर्गम पर्वतीय ज़िलों से हुई जो कुछ ही वर्षों में सल्यान, प्यूठान और कालीकोट ज़िलों तक फैल गयी। इन ज़िलों में सरकार की मौजूदगी जिला मुख्यालयों तक सिमटकर रह गयी और लगभग पूरा इलाक़ा माओवादी नियन्त्रण के अन्तर्गत आ गया। नेपाली गृह मन्त्रालय ने इन ज़िलों को 'अ' श्रेणी के संवेदनशील ज़िले घोषित कर दिया। सरकारी आकलन के अनुसार, दोलाखा, रामेछाप, सिन्धुली, काव्रेपालांचौक, सिन्धुपाल चौक, गोरखा, दांग, सुरखेत और अछाम ज़िले संवेदनशीलता की दृष्टि से 'ब' श्रेणी में रखे गये। 'स' श्रेणी में खोतांग, ओखालधुंगा, उदयपुर, मकवानपुर, ललितपुर, नुवाकोट, धादिंग, तनाहु, लामजुंग, पर्वत, बागलुंग, गुल्मी, अर्घाखाची, बार्डिया, दापलेख, जुमला और डोल्पा नामक सत्रह ज़िले शामिल थे। अलग-अलग अंशों में माओवादी छापामार नेपाल के कुल 75 में से 68 जिलों में सक्रिय थे और लगभग 70 प्रतिशत हिस्से पर उनका पूरा या आंशिक नियन्त्रण था। पश्चिमी और मध्य-पश्चिम क्षेत्र में तथा पूर्वी क्षेत्र के एक हिस्से में उनके मज़बूत आधार-क्षेत्र स्थापित हो चुके थे।

जनयुद्ध की शुरुआत थोड़े से छापामारों के दस्तों ने देसी हथियारों से की थी। लेकिन नेपाल सरकार आकलन के हिसाब से 2003 की शुरुआत तक माओवादी छापामार सैनिकों की संख्या 5,500 और मिलिशिया के जवानों की संख्या 8,000 तक पहुँच गयी थी जो पिछड़े हथियारों के साथ ही ए.के. 47, एस.एल.आर, 303 राइफलों, मोर्टारों, लाइन मशीनगनों, हथगोलों और उन्नत विस्फोटकों से लैस थे। इनमें से 85 प्रतिशत हथियार पुलिस और शाही नेपाल सेना से छीने गये थे। इस जनसेना के पीछे 4,500 पार्टी कार्यकर्ताओं, 33,000 दृढ़ एवं सक्रिय पार्टी समर्थकों और दो लाख पार्टी हमदर्दों की ताक़त थी (यह 2003 में सरकार का आकलन था)। माओवादी सशस्त्र बल का साठ प्रतिशत हिस्सा पश्चिम और मध्य-पश्चिम नेपाल के सुदृढ़ आधार इलाक़ों में तैनात था, जबकि दस प्रतिशत हिस्सा सुदूर पश्चिम में, दस प्रतिशत गोरखा जिले में और शेष हिस्सा काठमाण्डो घाटी में और इसके पूर्व में स्थित क्षेत्र में तैनात था।

नेपाल के सशस्त्र संघर्ष की सफलता का एक प्रमुख आन्तरिक कारण यह था कि पर्वतीय भूभाग, विशेषकर पश्चिम और मध्य-पश्चिम के जिलों में यातायात-संचार के साधन बहुत कम विकसित हैं और विशाल दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र छापामार संघर्ष की दृष्टि से बहुत अनुकूल हैं। प्रशासन तन्त्र यहाँ जिला मुख्यालयों पर केन्द्रित है और गाँवों तक पुलिस-तन्त्र की पकड़ भी काफ़ी कमज़ोर है। ग्रामीण जनता सदियों से सामन्ती उत्पीड़न, पिछड़ेपन और गतिरुद्ध जीवन का शिकार रही है। सामन्ती अभिजात और मुट्ठीभर भ्रष्ट नौकरशाह जनता को निचोड़कर काठमाण्डो और प्रमुख नगरों में विलासिता का जीवन बिताते रहे हैं। छापामार संघर्ष का मुक़ाबला करने जब शाही सेना सामने आयी, उस समय तक सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में क्रान्तिकारी अपना मज़बूत आधार क़ायम कर चुके थे। आधार इलाक़ों में पार्टी ने कई स्थानों पर भूस्वामियों से छीनी गयी ज़मीन के एक हिस्से पर भूमिहीनों की सामूहिक खेती की व्यवस्था क़ायम की, बड़े पैमाने पर ज़मीनें बाँटी गयीं और छोटी जोत वाले किसानों को सहकारी खेती के लिए प्रोत्साहित किया गया। इन क्रान्तिकारी भूमि सुधारों के साथ ही जन प्रतिनिधियों की चुनी हुई कमेटियों की देखरेख में शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रशासन का वैकल्पिक ढाँचा खड़ा करने की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण प्रयोगों की शुरुआत हुई। इन पहलक़दमियों ने आधार क्षेत्रों को मज़बूत बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

स्त्रियों की आधी आबादी की क्रान्तिकारी ऊर्जा और पहलक़दमी को निर्बन्ध करना भी ने.क.पा. (माओवादी) की सफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। एक अनुमान के अनुसार पार्टी कार्यकर्ताओं और जनमुक्ति सेना में लगभग एक तिहाई संख्या स्त्रियों की है। 18 अप्रैल 2003 को दिये गये बाबूराम भट्टराई के एक बयान के अनुसार निचली पार्टी कतारों में 50 प्रतिशत, सैनिकों में 30 प्रतिशत और पार्टी की केन्द्रीय कमेटी में 10 प्रतिशत संख्या स्त्रियों की है। 'ऑल नेपाल विमेन्स एसोसिएशन' (रिवोल्यूशनरी) ने.क.पा. (माओवादी) से जुड़ा स्त्री जन-संगठन माना जाता है जो गाँवों के अतिरिक्त शहरों की मध्यवर्गीय युवा स्त्री समुदाय में भी काफ़ी प्रभावी है और नेपाल का सबसे बड़ा स्त्री संगठन है। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) से अलग होते समय मतभेद का एक अहम मुद्दा यह था कि ने.क.पा. (माओवादी) इस बात का विरोध कर रही थी कि नेपाल की ठोस परिस्थितियों में दीर्घकालिक लोकयुद्ध के साथ ही जन-विद्रोह की सामरिक रणनीति का भी संश्लेषण करना होगा (इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है)। लेकिन बाद में उसने इस धारणा को 'प्रचण्ड पथ' के एक घटक के रूप में अपना लिया और उस पर अमल करते हुए शहरी क्षेत्रों में कई बार हड़तालों और बन्द की सफल कार्रवाइयाँ कीं। इन कार्रवाइयों में मज़दूरों और छात्रों की बड़ी आबादी उनके साथ लामबन्द हुई। 'ऑल नेपाल ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन' (रिवोल्युशनरी) और 'ऑल नेपाल नेशनल फ्री स्टूडेण्ट्स यूनियन' (रिवोल्युशनरी) क्रमशः मज़दूरों और छात्रों के सबसे बड़े और जुझारू जन संगठनों के रूप में उभरकर सामने आये। पार्टी की युवा शाखा 'युवा कम्युनिस्ट लीग' ने देशव्यापी स्तर पर अपना विस्तार किया और उसकी जुझारू कार्रवाइयों ने पार्टी का आधार मज़बूत करने में अहम भूमिका निभायी।

एक ओर जहाँ ने.क.पा. (माओवादी) ने जनयुद्ध को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया, वहीं क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य शक्तियों के प्रति संकीर्णतावादी रुख अपनाते हुए जनयुद्ध के बाद के दो-तीन वर्षों तक उसने उन्हें मित्र शक्ति भी नहीं माना और यहाँ तक कि उनके विरुद्ध बल-प्रयोग भी किया, लेकिन ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने उनके प्रति धैयपूर्ण दोस्ताना रुख अपनाते हुए बहस चलायी। 2001 के अपने राष्ट्रीय सम्मेलन में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने जनयुद्ध के सकारात्मक पक्षों का उल्लेख करते हुए अपना यह मूल्यांकन रखा कि (i) जनयुद्ध ने प्रतिक्रियावादी राज्य को कमज़ोर किया है, (ii) इसने प्रतिक्रियावादी शक्तियों के आपसी अन्तरविरोधों को तीखा कर दिया है, (iii) इसने जनता की आकांक्षाओं को उभारा और स्वर दिया है, और (iv) सकारात्मक बदलाव के लिए परिस्थितियाँ तैयार की हैं। लेकिन ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का मूल्यांकन था कि इससे उत्साहित होकर यदि माओवादी केन्द्रीय सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के लिए जनयुद्ध तेज़ करेंगे तो यह बेहद ख़तरनाक़ और नुक़सानदेह सिद्ध होगा। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का मानना था कि उन्हें जनयुद्ध के सकारात्मक पक्षों की रक्षा करने और क्षति को कम करने की कोशिश करनी चाहिए और सरकार के साथ वार्ता की प्रक्रिया में जाने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरी ओर ने.क.पा. (एमाले) माओवादियों का विरोध करने में नेपाली कॉंग्रेस के कोइराला और देउबा गुटों से एक क़दम भी पीछे नहीं थी। यहाँ तक कि उसने उनके दमन में भी भरपूर सहयोग दिया। एक के बाद एक सरकारें चलाकर ये सभी पार्टियाँ अपने भ्रष्ट, अवसरवादी और दमनकारी चरित्र को उजागर करके जनता में अपनी साख पहले ही खो चुकी थीं। जनयुद्ध-विरोधी उनके रवैये ने जनता में माओवादियों की साख को और मज़बूत बनाने का ही काम किया।

जून 2001 में रहस्यमय राजदरबार हत्याकाण्ड में राजा वीरेन्द्र के पूरे परिवार की हत्या के बाद ज्ञानेन्द्र राजा बने और कुख्यात भ्रष्ट और गुण्डा राजकुमार पारस उनका उत्तराधिकारी बना। जनता ने कभी भी इन सामूहिक हत्याओं के लिए राजकुमार दीपेन्द्र को ज़िम्मेदार मानने की सूचना पर यक़ीन नहीं किया और ज्ञानेन्द्र और पारस की भूमिका हमेशा ही शक के घेरे में रही। जनता का जो पिछड़ा हिस्सा राजशाही में धार्मिक आस्था रखता था, अब उसका भी मोहभंग हो चुका था। यह स्थिति जनयुद्ध के सर्वथा अनुकूल थी, लेकिन दूसरी ओर आसन्न क्रान्ति के ख़तरे को टालने के लिए न केवल बुर्जुआ संसदीय ताक़तें बल्कि भारतीय शासक वर्ग, चीनी शासक वर्ग और अमेरिकी साम्राज्यवाद भी पूरी तरह से राजा के साथ खड़े थे। जुलाई में जनयुद्ध और अधिक तेज़ हो गया। संकटग्रस्त कोइराला सरकार के इस्तीफ़े के बाद देउबा सरकार सत्तारूढ़ हुई। माओवादियों ने लचीला रुख अपनाते हुए अगस्त में चार महीने के युद्धविराम की घोषणा की और देउबा सरकार के साथ शान्ति वार्ता की शुरुआत की। इस पहल के पीछे ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के प्रयासों की विशेष भूमिका थी जिसकी कोशिश थी कि क्रान्तिकारी वाम के अतिरिक्त ने.क.पा. (एमाले) को भी साथ लेकर जनयुद्ध को आक्रमण से बचाया जाये। राजदरबार हत्याकाण्ड के बाद की परिस्थितियों में ने.क.पा. (एमाले) की भी यह विवशता थी कि वह अपनी खोई साख की बहाली के लिए इस पहल में हिस्सा ले। इन्हीं कारणों से अगस्त 2001 में सिलीगुड़ी में ने.क.पा. (माओवादी), ने.क.पा. (एकता केन्द्र) और ने.क.पा. (एमाले) के नेताओं की बैठक सम्भव हुई जिसके बाद देउबा सरकार के साथ माओवादियों की शान्तिवार्ता हुई। कई चक्रों की इस वार्ता की विफलता के बाद नवम्बर 2001 में माओवादियों ने युद्धविराम समाप्त करने की घोषणा की तथा सेना और पुलिस की चौकियों पर ज़ोरदार आक्रमणों की शुरुआत की। राजा ने आपातकाल घोषित कर दिया और सेना को विद्रोहियों को कुचलने के निर्देश जारी कर दिये। जन मुक्ति सेना के छापामार दस्तों ने सेना का भी डटकर मुक़ाबला किया और आधार इलाक़ों के बहुलांश पर उनका नियन्त्रण बना रहा। व्यापक जनसमुदाय ने जमकर उनका साथ दिया। केवल नवम्बर के महीने में ही सेना और छापामारों के बीच की झड़पों में सैकड़ों लोग मारे गये। लेकिन सैनिक दमन और शहादतों ने क्रान्तिकारियों के जनाधार को और अधिक पुख़्ता और व्यापक बनाने का काम किया। मई 2002 में राजा ने संसद भंग कर दी और नये चुनावों की घोषणा की। शेरबहादुर देउबा के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार ने आपातकाल को जारी रखने का निर्णय किया, जिसका संसदीय बुर्जुआ दलों और संशोधनवादियों ने भी विरोध किया। व्यवस्था का संकट और अधिक गहरा हो गया। शासक वर्गों के आपसी अन्तरविरोध तीखे हो गये। अक्टूबर 2002 में राजा ज्ञानेन्द्र ने देउबा सरकार को बर्ख़ास्त कर दिया और लोकेन्द्र बहादुर चन्द को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। नवम्बर में तय चुनावों को अनिश्चित काल के लिए टाल दिया गया। जनवरी, 2003 में एक बार फिर राज्य और ने.क.पा. (माओवादी) के बीच बातचीत के बाद युद्धविराम की घोषणा हुई। मई-जून में लोकेन्द्र बहादुर चन्द के इस्तीफ़े के बाद राजा ने सूर्य बहादुर थापा को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया। अगस्त में माओवादियों ने युद्धविराम समाप्त करते हुए एक बार फिर जनयुद्ध को तेज़ करने का ऐलान किया। अब गाँवों में जारी सशस्त्र संघर्ष के साथ ही शहरों में भी पुलिस और कार्यकर्ताओं-छात्रों के बीच झड़पें होने लगीं। बन्द और हड़तालों का सिलसिला आम हो गया।

2003-2004 के दौरान ने.क.पा. (माओवादी) का आकलन था कि रणनीतिक प्रतिरक्षा के दौर से रणनीतिक सन्तुलन के दौर में कुछ वर्षों पहले ही प्रविष्ट हो चुका जनयुद्ध अब निर्णायक दौर में प्रवेश कर सकता है और रणनीतिक आक्रमण शुरू करने की परिस्थितियाँ अब लगभग तैयार हैं। आगे चलकर समय ने उनके इस आकलन को ग़लत साबित किया। आज की विश्व परिस्थिति में नेपाल जैसे देश की भू-राजनीतिक परिस्थिति में लाल सत्ता की स्थापना के निर्णायक संघर्ष का कम अवधि में विजयी हो पाना सम्भव नहीं था। संघर्ष की प्रक्रिया अभी काफ़ी जटिल और दीर्घकालिक होनी थी। क्रान्तिकारी वाम को संघर्ष का दबाव बनाने, समझौता करके विराम लेने और फिर संघर्ष का दबाव बनाने के कई चक्रों से गुज़रना पड़ सकता था। रणनीतिक सन्तुलन का दौर अभी काफ़ी लम्बा होना था। इस दौर में आरज़ी सरकार के गठन और अन्तरिम संविधान की भी सम्भावना थी। यह सम्भव था कि क्रान्ति को कुचलने के लिए राजा के साथ जा खड़ी हुई बुर्जुआ संसदीय ताक़तें भी अन्ततः राजाशाही की समाप्ति के लिए तैयार हो जायें और जनवादी क्रान्ति का एक कार्यभार पूरा होने के बाद वर्ग संघर्ष अगले दौर में प्रविष्ट हो जाये। साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद और क्रान्तिकारी भूमि सुधार के राष्ट्रीय जनवादी कार्यभारों को पूरा करने के लिए क्रान्तिकारी वाम को वर्ग संघर्ष के किन रूपों और कितने लम्बे दौर से गुज़रना होगा, यह तो बता पाना मुश्किल है लेकिन यह बात 2003 में भी स्पष्ट थी कि जनवादी क्रान्ति की निर्णायक विजय नेपाल में अभी दूर है। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की धारणा भी कुछ ऐसी ही थी और इसीलिए उनका कहना था कि माओवादियों द्वारा अभी केन्द्रीय सत्ता पर क़ब्ज़े का निर्णायक प्रयास ख़तरनाक़ होगा।

मई 2004 में देशव्यापी जनप्रदर्शनों और हड़तालों के हफ़्तों जारी सिलसिलों के बाद राजतन्त्रवादी प्रधानमन्त्री सूर्य बहादुर थापा ने इस्तीफ़ा दे दिया। राजा ने शेर बहादुर देउबा को एक बार फिर प्रधानमन्त्री नियुक्त किया और उन्हें शीघ्र चुनाव कराने की ज़िम्मेदारी सौंपी। लेकिन इससे जनज्वार रुका नहीं। अन्ततः राजा ने 1 फरवरी 2005 को देउबा सरकार को बर्ख़ास्त करके आपातकाल घोषित कर दिया और सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली। माओवादी विद्रोहियों

(पृष्ठ 6 पर जारी)

नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास

(पृष्ठ 5 से आगे)

को कुचलने के लिए उन्होंने ऐसा करना अपरिहार्य बताया। राजा के इस निर्णय से उनके सरपरस्त पश्चिमी साम्राज्यवादी और भारतीय बुर्जुआ वर्ग भी सहमत नहीं थे। उनका मानना था कि इससे जनयुद्ध को जनता का और अधिक समर्थन मिलने लगेगा और बुर्जुआ संसदीय ताक़तें भी राजाशाही के विरुद्ध जनान्दोलन में भागीदार बनने को विवश हो जायेंगी। इस अन्तरराष्ट्रीय दबाव के चलते अप्रैल में राजा ने आपातकाल तो हटा लिया, लेकिन राजा का प्रत्यक्ष निरंकुश शासन जारी रहा। जो संसदीय बुर्जुआ ताक़तें नेपाली क्रान्ति के निरन्तर अग्रवर्ती विकास से भयाक्रान्त होकर राजा और राजतन्त्रवादी सामन्ती ताक़तों के साथ खड़ी होकर माओवादियों के दमन में भरपूर सहयोग कर रही थीं, उन्हें राजा की निरंकुश तानाशाही ने विवश कर दिया कि वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए राजतन्त्र के विरुद्ध आवाज़ उठायें। जनयुद्ध के प्रेरणादायी प्रभाव और ज्ञानेन्द्र की आत्मघाती राजनीतिक ग़लतियों के चलते 2005 में व्यापक जनसमुदाय के बीच गहरी विद्रोह भावना जड़ें जमा चुकी थी। 2006 के इतिहास-प्रसिद्ध 'जनान्दोलन-दो' की परिस्थितियाँ (1990 में बहुदलीय जनतन्त्र बहाली के लिए हुए देशव्यापी आन्दोलन को 'जनान्दोलन-एक' कहा जाता है) तैयार हो चुकी थीं। अपने अस्तित्व की रक्षा और जनता में खोई साख हासिल करने के लिए ज़रूरी था कि नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (एमाले) सहित सभी बुर्जुआ और संसदीय वाम की शक्तियाँ राजतन्त्र-विरोधी मोर्चा में शामिल हों। सात पार्टियों का गठबन्धन इन्हीं स्थितियों में बना जिसमें ने.क.पा. (माओवादी) से अलग सक्रिय क्रान्तिकारी वाम पार्टियों के साथ ही संसदीय वाम की पार्टियाँ और मुख्य बुर्जुआ पार्टियाँ शामिल थीं। गठबन्धन में शामिल कुल पार्टियाँ थीं : नेपाली कांग्रेस, नेपाली कांग्रेस (लोकतान्त्रिक), सद्भावना पार्टी (आनन्दी देवी), ने.क.पा. (एमाले), नेपाल मज़दूर-किसान पार्टी, ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का जनमोर्चा और संयुक्त वाम मोर्चा। संयुक्त वाम मोर्चा की तीन घटक पार्टियाँ थीं : ने.क.पा. (मा.ले.मा. केन्द्र), ने.क.पा. (युनाइटेड मार्क्सिस्ट) और सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली ने.क.पा. (माले)। इनमें से पहली क्रान्तिकारी वाम धारा की पार्टी थी, जबकि शेष दो संसदीय वाम धारा की पार्टियाँ थीं। सात पार्टियों के इस गठबन्धन के साथ ने.क.पा. (माओवादी) को वार्ता के लिए तैयार करने और लोकतन्त्र बहाली के आन्दोलन के लिए व्यापक संयुक्त मोर्चा बनाने में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने इसके लिए औपचारिक प्रस्ताव पारित किया और उसके नेतृत्व के एक प्रतिनिधिमण्डल ने रोल्पा जाकर प्रचण्ड, बाबूराम भट्टराई और ने.क.पा. (माओवादी) की केन्द्रीय कमेटी के अन्य सदस्यों से बातचीत की। साथ ही उन्होंने गिरिजा प्रसाद कोइराला और माधव कुमार नेपाल से भी कई दौर की बातचीत की। उनका मानना था कि लोकतन्त्र बहाली के लिए और राजतन्त्र की समाप्ति के लिए क्रान्तिकारी वाम की पार्टियों, संसदीय वाम की पार्टियों और नेपाली कांग्रेस सहित प्रमुख बुर्जुआ संसदीय पार्टियों का संयुक्त मोर्चा सम्भव और ज़रूरी है क्योंकि ज्ञानेन्द्र के शासनकाल में राजा की साख जनता में समाप्त हो चुकी है और संसदीय बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों की यह विवशता है कि अपने अस्तित्व के लिए वे राजतन्त्र-विरोधी आन्दोलन में शामिल हों। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप नवम्बर 2005 में सात पार्टियों के गठबन्धन और ने.क.पा. (माओवादी) के बीच बारह-सूत्री करार हुआ और दिल्ली में उस पर हस्ताक्षर हुआ।

अप्रैल 2006 में नेपाल में जन सैलाब सड़कों पर उमड़ पड़ा। 1990 के बाद यह दूसरा व्यापक और ज़बरदस्त जनउभार था जिसे 'जनान्दोलन-दो' कहा जाता है। इस जनान्दोलन ने भारतीय शासक वर्ग और साम्राज्यवादियों के सामने भी यह स्पष्ट कर दिया कि राजा की सत्ता को अब बहुत दिनों तक बचाये रख पाना सम्भव नहीं है और नेपाली जनक्रान्ति को रोकने का एकमात्र रास्ता यही हो सकता है कि नेपाल में बहुदलीय लोकतन्त्र बहाल हो, राजा की सत्ता या तो मात्र अनुष्ठानिक हो जाये या समाप्त हो जाये और नेपाली कांग्रेस तथा ने.क.पा. (एमाले) के हाथ मज़बूत करके क्रान्तिकारी वाम की अग्रवर्ती बढ़त को थामने की यथासम्भव कोशिश की जाये। इन परिस्थितियों ने राजा ज्ञानेन्द्र को संसद की बहाली के लिए विवश कर दिया। गिरिजा प्रसाद कोइराला अन्तरिम सरकार के प्रधानमन्त्री नियुक्त हुए और माओवादियों ने तीन महीने के लिए युद्धविराम घोषित किया। मई 2006 में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करके संसद ने राजा के राजनीतिक अधिकारों में कटौती कर दी। तीन वर्षों बाद सरकार और माओवादियों के बीच शान्ति वार्ता की शुरुआत हुई। जून 2006 में पहली बार कोइराला और प्रचण्ड के बीच सीधी वार्ता हुई और अन्तरिम सरकार में माओवादी विद्रोहियों के शामिल होने पर सहमति बनी। इस सहमति की शर्त यह थी कि नेपाल को जनवादी गणराज्य घोषित करने और राजशाही के भविष्य पर अन्तिम निर्णय के लिए अन्तरिम सरकार यथाशीघ्र संविधान सभा का चुनाव करायेगी जो नेपाल के संघात्मक गणराज्य का नया संविधान बनायेगी। जिस संविधान सभा की माँग 1950 से ही नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी, उसे दस वर्षों से जारी जनयुद्ध और 2006 के जनान्दोलन ने व्यापक जनता का एजेण्डा बना दिया, जिसे सभी बुर्जुआ संसदीय ताक़तों को भी मानने के लिए विवश होना पड़ा। यह एक ऐतिहासिक विजय थी।

जनयुद्ध की समाप्ति से लेकर संविधान सभा के चुनावों तक

नवम्बर 2006 में सरकार और माओवादियों के बीच एक शान्ति समझौता हुआ और दस वर्षों से जारी जनयुद्ध के औपचारिक अन्त की घोषणा हुई। माओवादी अन्तरिम सरकार में शामिल होने पर सहमत हुए। इस अन्तरिम सरकार में नेपाली कांग्रेस, सद्भावना पार्टी, ने.क.पा. (एमाले) आदि के साथ ने.क.पा. (एकता केन्द्र) से जुड़ा जनमोर्चा और क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य महत्त्वपूर्ण पार्टियाँ भी शामिल थीं। माओवादी अपने हथियारों को संयुक्त राष्ट्र संघ की देखरेख में रखने के लिए तैयार हो गये। यह तय हुआ कि संविधान सभा के चुनाव और नयी व्यवस्था क़ायम होने तक शाही सेना और जनमुक्ति सेना दोनों ही बैरकों में रहेंगी और चुनाव के बाद राष्ट्रीय सैन्य बल में जनमुक्ति सेना को शामिल करने के तौर-तरीक़ों को ठोस रूप में तय किया जायेगा। जनवरी 2007 में एक अस्थायी संविधान की शर्तों के अन्तर्गत माओवादी संसद में प्रविष्ट हुए और अप्रैल 2007 में वे सरकार में शामिल हुए।

जनवरी 2007 से लेकर अप्रैल 2008 में हुए संविधान सभा के चुनाव तक का समय नेपाल में एक अनिश्चितता और तनाव भरा संक्रमण का समय था। जनवरी 2007 में नेपाल के तराई क्षेत्र में 'एक मधेस एक प्रदेश' के नारे के साथ क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग का आन्दोलन हिंसात्मक रूप में भड़क उठा। हालाँकि माओवादी और क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य पार्टियाँ भी नेपाल के भावी संघात्मक गणराज्य के ढाँचे में अलग-अलग राष्ट्रीयताओं और जनजातियों की स्वायत्तता की बात करती थीं और तराई में माओवादियों का व्यापक समर्थन-आधार भी था, लेकिन मधेस समस्या पर कुछ व्यावहारिक चूकें हुईं और व्यापक जनता को इस प्रश्न पर अपना दृष्टिकोण समझा पाने में क्रान्तिकारी वाम शक्तियाँ विफल रहीं। तराई क्षेत्र के कुछ इलाक़ों में थारू और कुछ अन्य जनजातियों की भी आबादी होने के चलते 'एक मधेस एक प्रदेश' का नारा उचित और व्यवहार्य नहीं हो सकता था, लेकिन मधेसी जनता के एक बड़े हिस्से को संकीर्णतावादी राष्ट्रवादी मधेसी ताकतें अपने साथ लेने में सफल रहीं, जिसके चलते आगे चलकर तराई क्षेत्र में मधेसी जनाधिकार मंच, और तराई मधेस जनतान्त्रिक पार्टी जैसी नवगठित पार्टियों को चुनावों में भारी सफलता मिली और वे चौथी सबसे बड़ी ताकत के रूप में उभरकर सामने आयीं। मधेसी आन्दोलन के पीछे तराई के भूस्वामियों की सत्ता में भागीदारी की महत्त्वाकांक्षा की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। साथ ही, इसे हवा देने में भारतीय शासक वर्ग और साम्राज्यवादियों की भी एक अहम भूमिका रही है, ताकि नयी सत्ता संरचना में उत्पन्न अन्तरविरोधों का वे ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठा सकें।

मिली-जुली अन्तरिम सरकार में नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (एमाले) का अपवित्र गठबन्धन लगातार अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने और माओवादियों की स्थिति कमज़ोर करने के लिए कुचक्र रचता रहा। कामचलाऊ सरकार का मुख्य काम संविधान सभा के चुनाव की परिस्थितियाँ तैयार करना था, लेकिन वह माओवादियों की सहमति के बग़ैर महत्त्वपूर्ण नीतिगत फ़ैसले लेती रही और यह भी कोशिश करती रही कि संवैधानिक राजतन्त्र की अनुष्ठानिक मौजूदगी की परिस्थितियाँ तैयार हो जायें। जनभावना के भारी दबाव को देखते हुए राजतन्त्र की समाप्ति को स्वीकारना तो अन्ततः उनकी मजबूरी हो गयी लेकिन माओवादियों को अलग-थलग करने के कुचक्र जारी रहे। उधर नारायणहिती महल में बैठा राजा भी शाही सेना के अधिकारियों में मौजूद राजतन्त्रवादियों की मदद से एक बार फिर सत्ता पर क़ाबिज़ होने की घात में था। उसके तार नेपाली कांग्रेस के नेताओं के साथ ही पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों, भारत सरकार के प्रतिनिधियों और विश्व हिन्दू महासभा के ज़रिये नेपाल की सीमा से लगे भारतीय क्षेत्र में सक्रिय धार्मिक मूलतत्त्ववादियों के साथ भी जुड़े हुए थे। सभी उचित मौक़े की ताक में थे। क्रान्तिकारी वाम शक्तियाँ और विशेषकर माओवादी कठिन परिस्थिति का सामना कर रहे थे, पर जागृत जनसमुदाय उनके साथ था और जनवादी गणराज्य की स्थापना की माँग से वह एक क़दम भी पीछे हटने को तैयार नहीं था। मई 2007 में संविधान सभा का चुनाव नवम्बर तक के लिए टाल दिया गया। षड्यन्त्रों का मुक़ाबला करते हुए दबाव बनाने के लिए सितम्बर में माओवादियों ने संविधान सभा के चुनाव से पहले राजतन्त्र को समाप्त करने की माँग रखी और अन्तरिम सरकार से बाहर आ गये। नवम्बर में होने वाला संविधान सभा का चुनाव फिर आगे के लिए टाल दिया गया। एक बार फिर गृहयुद्ध का संकट मँडराने लगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव ने शान्ति प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए नेपाल की पार्टियों से अपने मतभेदों को हल करने की अपील की। इस दौरान सभी बुर्जुआ दल और मीडिया भूस्वामियों और भ्रष्ट अधिकारियों के विरुद्ध क्रान्तिकारी कार्रवाइयों को जमकर "माओवादियों के अत्याचार" के रूप में प्रस्तुत करते रहे और युवा कम्युनिस्ट लीग की "गुण्डागर्दी" का हौवा खड़ा करते रहे, लेकिन इसका जनता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दिसम्बर 2007 में संसद ने शान्ति समझौते के एक हिस्से के तौर पर राजतन्त्र के उन्मूलन का प्रस्ताव पारित किया और माओवादी फिर सरकार में शामिल हो गये। 10 अप्रैल, 2008 को संविधान सभा के चुनाव की घोषणा हुई, फिर भी अनिश्चितता का माहौल और प्रतिक्रान्ति की आशंका अन्तिम क्षण तक बनी रही। चुनाव के नतीजे के तौर पर सभी पार्टियों ने जितने वोट और प्रत्यक्ष मतदान एवं समानुपातिक मतदान के ज़रिये जितनी सीटें हासिल कीं, उन्हें अगले पेज पर दिये गये दो चार्टों में देखा जा सकता है।

संविधान सभा के चुनाव में ने.क.पा. (माओवादी) कुल 220 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरकर सामने आयी, हालाँकि क्रान्तिकारी वाम धारा की अन्य पार्टियों को साथ लेकर भी वह सरकार बनाने लायक़ बहुमत पाने की स्थिति में नहीं थी। क्रमशः 110 और 103 सीटों के साथ नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (एमाले) दूसरे और तीसरे स्थान पर रहीं। मधेस जनाधिकार मंच और तराई मधेस जनतान्त्रिक पार्टी क्रमशः 52 और 20 स्थान पाकर चौथे और पाँचवे स्थान पर रहे। संविधान सभा की इस त्रिशंकु स्थिति ने नेपाल के नये जनतान्त्रिक संघात्मक गणराज्य के संविधान-निर्माण के काम को अत्यधिक जटिल बना दिया है। राजा की सत्ता की समाप्ति और गणराज्य की घोषणा तो अवश्यम्भावी थी, क्योंकि इसमें अड़ंगा डालने वालों को समूची जनता का महाकोप झेलना पड़ता और तब पूरी जनता और अधिक मज़बूती के साथ माओवादियों के साथ लामबन्द हो जाती। इसीलिए नवनिर्वाचित संसद/संविधान सभा ने अपनी पहली ही बैठक में राजतन्त्रवादियों के 4 मतों के मुक़ाबले 571 मतों से राजतन्त्र की समाप्ति और गणराज्य की घोषणा कर दी। लेकिन अब बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों तथा क्रान्तिकारी वाम धारा के बीच संघर्ष की एक कठिन, जटिल, दीर्घकालिक और एक हद तक अनिश्चिततापूर्ण चक्र की शुरुआत हो चुकी है। नयी सरकार का गठन अभी तक नहीं हो सका है। वर्तमान संसद का मुख्य काम एक संक्रमणकालीन सरकार बनाकर नये संविधान का निर्माण करना है, लेकिन विगत अन्तरिम संविधान के अन्तर्गत ही माओवादियों को सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सरकार चलाने का अवसर देने के बजाय नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (एमाले) हर दिन उन पर नयी-नयी शर्तें थोपने लगे। अन्तरिम संविधान में प्रधानमन्त्री को हटाने के लिए दो-तिहाई बहुमत के प्रावधान को हटाकर वे सामान्य बहुमत से ही उसे हटाने का प्रावधान रखने पर ज़ोर देने लगे। फिर उन्होंने सत्ता का वैकल्पिक केन्द्र बनाने की गुंजाइश रखने के लिए राष्ट्रपति का पद सृजित करने का प्रस्ताव रखा, जो हालाँकि औपचारिक होगा, फिर भी उसके पास सेना के सर्वोच्च कमाण्डर का अधिकार और आपातकालीन अधिकार तो होंगे ही, जिनका आगे सत्ता-संघर्ष की परिस्थिति में इस्तेमाल किया जा सकेगा। इसके बाद उन्होंने यह भी शर्त रखी कि माओवादी जनता द्वारा छीनी गयी सम्पत्ति वापस करें, युवा कम्युनिस्ट लीग को भंग करें और प्रधानमन्त्री बनने से पहले प्रचण्ड जनमुक्ति सेना के सर्वोच्च कमाण्डर का पद छोड़ दें। ये सारी नयी शर्तें शान्ति समझौते की सहमति के एकदम उलट थीं। बुर्जुआओं और संशोधनवादियों ने अपना असली रंग दिखा दिया और सरासर अँधेरगर्दी पर उतर आये। शुरुआती दौर में पुरज़ोर विरोध के बाद ने.क.पा. (माओवादी) ने राष्ट्रपति पद और सामान्य बहुमत से प्रधानमन्त्री को हटाने के प्रावधानों पर अब सहमति के संकेत दिये हैं, लेकिन राष्ट्रपति पद कोइराला को सौंपने के प्रस्ताव को सिरे से ख़ारिज करते हुए उन्होंने किसी ग़ैर-राजनीतिक सम्मानित नागरिक को राष्ट्रपति बनाने की शर्त रखी है। युवा कम्युनिस्ट लीग को भंग करने, प्रचण्ड द्वारा जनमुक्ति सेना के अध्यक्ष पद से इस्तीफ़ा देने और भूस्वामियों से छीनकर बाँटी गयी ज़मीन को उन्हें वापस करने की शर्तों को मानने से उन्होंने इन्कार किया है। उनका कहना है कि भूस्वामियों से ज़मीन "अन्यायपूर्वक" नहीं ली गयी है, बल्कि किसानों को उनका वाजिब हक़ दिलाया गया है। गतिरोध अभी भी बरक़रार है, हालाँकि समाधान की दिशा में कुछ प्रगति अवश्य हुई है। माओवादियों के पक्ष में जो सबसे बड़ी बात है वह यह कि नये गणराज्य के संविधान-निर्माण के काम में बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियाँ जितना अधिक अड़ंगा डाल रही हैं और शान्ति समझौते के प्रावधानों को ताक पर रखकर जितना अधिक नयी-नयी शर्तें थोप रही हैं, उतना ही अधिक जनता की नज़रों में वे नंगी हो रही हैं और माओवादियों की स्थिति मज़बूत हो रही है।

और इन सबके ऊपर, सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न

(पृष्ठ 7 पर जारी)

नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास

(पृष्ठ 6 से आगे)

तो यह है कि एक अल्पमत सरकार चलाते हुए माओवादी नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (एमाले) के दबावों का सामना करते हुए कुछ तात्कालिक प्रगतिशील क़दम भी किस प्रकार उठा सकेंगे तथा संविधान सभा में बहुमत न हो पाने की स्थिति में नये गणराज्य का संविधान किस हद तक एक जनवादी संविधान बन पायेगा? प्रश्न यह भी है कि संविधान सभा द्वारा बनने वाला नया संविधान यदि सोवियतों या कम्यूनों जैसी सर्वहारा जनवादी प्रणाली के बजाय पूँजीवादी संसदीय प्रणाली के चुनाव और बहुदलीय जनवाद का ही प्रावधान करेगा तो नेपाल की जनवादी क्रान्ति अपने अग्रवर्ती विकास के लिए कौन-सा रास्ता पकड़ेगी। क्या माओवादी नये सिरे से जनयुद्ध को आगे बढ़ायेंगे? बहुदलीय जनवाद के प्रति ने.क.पा. (माओवादी) के झुकाव को और उनके कुछ अन्य विचलनों को देखते हुए क्या यह ख़तरा नहीं है कि वे पूँजीवादी संसदीय प्रणाली में ही रच-पच जायें? यदि ऐसा नहीं भी होता है, तो यह सवाल फिर भी अहम है कि सर्वहारा सत्ता के किसी वैकल्पिक केन्द्र का या सर्वहारा जनवाद के, सोवियतों जैसे किसी वैकल्पिक मंच का विकास किस रूप में होगा? इन सभी प्रश्नों का कोई सुनिश्चित उत्तर नहीं दिया जा सकता, लेकिन भविष्य के गर्भ में छिपी सम्भावनाओं का आकलन करने के लिए यह ज़रूरी है कि हम ने.क.पा. (माओवादी) की विचारधारात्मक-राजनीतिक अवस्थितियों में विगत लगभग एक दशक के दौरान आने वाले परिवर्तनों, क्रान्तिकारी वाम की दूसरी प्रमुख शक्ति ने.क.पा. (एकता केन्द्र) द्वारा प्रस्तुत आलोचना तथा दोनों पार्टियों के बीच जारी बहस और एकता की प्रक्रिया पर एक सरसरी नज़र डालें।

ने.क.पा. (माओवादी) और ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के बीच मतभेद के मुद्दे, राजनीतिक वाद-विवाद और क़दम-ब-क़दम एकता की ओर अग्रवर्ती विकास

पिछले लगभग दो दशकों के दौरान नेपाल के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में बिखराव, एकता और ध्रुवीकरण की जो प्रक्रिया चलती रही है उसमें दो पार्टियाँ प्रमुख शक्तियों के रूप में उभरकर सामने आयीं पहली, ने.क.पा. (माओवादी) और दूसरी ने.क.पा. (एकता केन्द्र)। राजनीतिक विश्लेषक पिछले एक दशक के दौरान नेपाल में माओवादी जनयुद्ध की विकास-प्रक्रिया और उसकी उपलब्धियों-विशिष्टताओं पर काफ़ी कुछ लिखते रहे हैं, लेकिन इस दौरान ने.क.पा. (माओवादी) की अवस्थितियों में आये महत्त्वपूर्ण और नाटकीय बदलाव पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। जनयुद्ध की पूरी अवधि के दौरान माओवादियों की नीतियों में आये बहुतेरे बदलावों के पीछे क्रान्तिकारी वाम शिविर की इन दो प्रमुख धाराओं के बीच जारी बहसों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन बहसों को पश्चदृष्टि से देखने पर हम पाते हैं कि 1994 में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) से अलग होने और 1996 में जनयुद्ध शुरू करने के समय से लेकर बाद के लगभग एक दशक के दौरान ने.क.पा. (माओवादी) ने क्रान्तिकारी व्यवहार के दौरान अपनी बहुत सारी पूर्ववर्ती अवस्थितियों को छोड़कर ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की अवस्थितियों को अपना लिया। 2007 तक स्थिति यह हो चुकी थी कि मतभेद के अधिकांश मुद्दे हल हो गये थे। ऊपर हम चर्चा कर आये हैं कि 1994 की फूट के समय ने.क.पा. (एकता केन्द्र) में मतभेद का पहला मुद्दा समाजवादी संक्रमण से जुड़े अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के अनुभवों के आकलन को लेकर था। इस प्रश्न पर आगे चलकर ने.क.पा. (माओवादी) ने मूलतः और मुख्यतः ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की अवस्थिति को अपना लिया। मतभेद का दूसरा मुद्दा सर्वहारा जनवाद की समझदारी और उससे जुड़ी समस्याओं को लेकर था। इस प्रश्न पर भी आगे चलकर ने.क.पा. (माओवादी) ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के निष्कर्षों पर आ गयी और इस मुद्दे पर दस्तावेज़ भी निकाला। लेकिन इस समस्या के उपचार को लेकर माओवादियों की जो सोच है, उसमें ने.क.पा. (एकता केन्द्र) दक्षिणपन्थी भटकाव का एक नया ख़तरा देख रही है। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का मानना है कि बहुदलीय लोकतन्त्र की भूमिका को ने.क.पा. (माओवादी) बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखती है और उसकी सीमाओं की अनदेखी कर रही है। बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धा की बात तो मार्क्स और एंगेल्स ने भी की थी, लेकिन समाजवाद की रक्षा और निर्माण बहुदलीय जनवाद से नहीं बल्कि सोवियत जनवाद से ही हो सकता है। बहुदलीय संसदीय मंच उसका सहायक अंग ही हो सकता है। एकता केन्द्र को माओवादियों की सोच में मदन भण्डारी द्वारा प्रस्तुत बहुदलीय लोकतन्त्र की अवधारणा की ओर झुकाव का ख़तरा दिखायी देता है। उसका मानना है कि सर्वहारा जनवाद या नवजनवाद को स्वीकार करने वाली पार्टियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा हो सकती है, लेकिन समाजवादी संक्रमण के दौरान आने वाली जनवाद की समस्या का समाधान उससे नहीं हो सकता। समाधान केवल सोवियत मॉडल में है कठपुतली सोवियतें नहीं बल्कि प्रभावी सोवियतों में है। उल्लेखनीय है कि इस प्रश्न पर ने.क.पा. (माओवादी) पहले जड़सूत्रवादी अवस्थिति पर खड़ी थी जबकि अब उसकी अवस्थिति में दक्षिणपन्थी भटकाव का ख़तरा दिख रहा है।

मतभेद के तीसरे मुद्दे, यानी क्रान्ति के रास्ते के प्रश्न पर ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने जब लोकयुद्ध के साथ आम बग़ावत के कुछ घटकों के भी संश्लेषण की बात कही थी तो ने.क.पा. (माओवादी) ने सारसंग्रहवादी कहकर उनकी आलोचना की थी लेकिन बाद में उन्होंने इसी धारणा को अपना लिया और इसे 'प्रचण्ड पथ' का एक घटक बना लिया।

लेकिन 'प्रचण्ड पथ' के प्रश्न पर ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का दृष्टिकोण अभी भी तीव्र आलोचनात्मक है। फ़र्क़ यह है कि ने.क.पा. (माओवादी) अब कम से कम उसकी आलोचना पर विचार करने के लिए तैयार है। सन 2000 में मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद के साथ 'प्रचण्ड पथ' को भी नेपाली क्रान्ति का मार्गदर्शक सिद्धान्त घोषित करते हुए ने.क.पा. (माओवादी) ने एक बार फिर अपनी ही उस अवस्थिति को पलट दिया था, जिस पर खड़े होकर उसने कभी पेरू की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) द्वारा 'गोंज़ालो विचारधारा' को विचारधारात्मक मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाने का विरोध किया था। 'प्रचण्ड पथ' के सार्वभौमिक महत्त्व की व्याख्या पार्टी के तीन नेता तीन अलग-अलग तरीक़ों से करते हैं। बाबूराम भट्टराई कहते हैं कि मुख्यतः नेपाली विशिष्टता के बावजूद इसका एक सार्वभौमिक चरित्र भी है। प्रचण्ड का कहना है कि विश्व क्रान्ति को दिशा देने के लिए 'प्रचण्ड पथ' को अभी लम्बा रास्ता तय करना होगा। इस प्रकार सार्वभौमिकता पर उनका ज़ोर भट्टराई से कुछ अधिक है। लेकिन सबसे आगे बढ़कर, केन्द्रीय कमेटी के तीसरे प्रमुख सदस्य किरण इसे 'इक्कीसवीं सदी की विश्व क्रान्ति की आधारशिला' ही घोषित कर देते हैं। इससे अधिक हास्यास्पद बड़बोलापन कुछ और नहीं हो सकता। नेपाल में जारी राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति वस्तुतः इतिहास का एक छूटा हुआ कार्यभार है जो अब पूरा हो रहा है। यह बीसवीं सदी की क्रान्ति है जो इक्कीसवीं सदी में हो रही है। पिछड़ी उत्पादक शक्तियों वाले नेपाल में क्रान्ति के मार्ग का सामान्य अनुभव किसी भी रूप में पूँजीवादी विकास के रास्ते पर आगे बढ़ चुके भारत, चीन, द. अफ्रीका, नाइजीरिया, मिस्र, इण्डोनेशिया, मलेशिया, ब्राज़ील, चीले, अर्जेण्टीना, मेक्सिको आदि तीसरी दुनिया के उन अधिकांश देशों

(पृष्ठ 10 पर जारी)

नेपाल के चुनाव परिणाम : सभी पार्टियों को मिली सीटें

पार्टियाँ	कुल सीटें	प्रत्यक्ष चुनाव	आनुपातिक प्रतिनिधित्व
नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी)	220	120	100
नेपाली कांग्रेस	110	37	73
नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एमाले)	103	33	70
मधेशी जनाधिकार मंच	52	30	22
तराई मधेश लोकतान्त्रिक पार्टी	20	9	11
सद्भावना पार्टी (महतो)	9	4	5
राष्ट्रीय प्रजातन्त्र पार्टी	8	–	8
नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माले)	8	–	8
जनमोर्चा नेपाल	7	2	5
नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (संयुक्त)	5	–	5
राष्ट्रीय प्रजातन्त्र पार्टी नेपाल	4	–	4
राष्ट्रीय जनमोर्चा	4	1	3
नेपाल मज़दूर किसान पार्टी	4	2	2
राष्ट्रीय जनशक्ति पार्टी	3	–	3
राष्ट्रीय जनमुक्ति पार्टी	2	–	2
नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एकीकृत)	2	–	2
नेपाल सद्भावना पार्टी (आनन्दी देवी)	2	–	2
नेपाली जनता दल	2	–	2
संघीय लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय मंच	2	–	2
समाजबादी प्रजातान्त्रिक जनता पार्टी नेपाल	1	–	1
दलित जनजाति पार्टी	1	–	1
नेपाल परिवार दल	1	–	1
नेपाल राष्ट्रीय पार्टी	1	–	1
नेपाल लोकतान्त्रिक समाजबादी पार्टी	1	–	1
छूरे भावर राष्ट्रीय एकता पार्टी नेपाल	1	–	1
स्वतन्त्र	2	2	–
कुल	575	240	335

संविधान सभा में कुल 601 सीटें हैं। शेष 26 सीटें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा मनोनीत लोगों से भरी जायेंगी।

नेपाल के चुनाव परिणाम : सभी पार्टियों को मिले वोटों की संख्या

क्र.सं.	पार्टी का नाम	कुल प्राप्त वोट
1	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी)	3144204
2	नेपाली कांग्रेस	2269883
3	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एमाले)	2183370
4	मधेसी जन-अधिकार मंच, नेपाल	678327
5	तराई मधेस लोकतान्त्रिक पार्टी	338930
6	राष्ट्रीय प्रजातन्त्र पार्टी	263431
7	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माले)	243545
8	सद्भावना पार्टी	167517
9	जनमोर्चा नेपाल	164381
10	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (संयुक्त)	154968
11	राष्ट्रीय प्रजातन्त्र पार्टी नेपाल	110519
12	राष्ट्रीय जनमोर्चा	106224
13	राष्ट्रीय जनशक्ति पार्टी	102147
14	नेपाल मज़दूर किसान पार्टी	74089
15	संघीय लोकतान्त्रिक राष्ट्रीय मंच	71958
16	नेपाल सद्भावना पार्टी (आनन्दी देवी)	55671
17	राष्ट्रीय जनमुक्ति पार्टी	53910
18	नेपाली जनता दल	48990
19	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एकीकृत)	48600
20	दलित जनजाति पार्टी	40348
21	नेपाल राष्ट्रीय पार्टी	37757
22	समाजवादी प्रजातान्त्रिक जनता पार्टी, नेपाल	35752
23	छूरे भावर राष्ट्रीय एकता पार्टी नेपाल	28575
24	नेपाल लोकतान्त्रिक समाजवादी दल	25022
25	नेपाल परिवार दल	23512
26	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)	21234
27	तमसालिंग नेपाल राष्ट्रीय दल	20657
28	राष्ट्रीय जनता दल	19305
29	नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (संयुक्त मार्क्सवादी)	18717
30	लोक कल्याणकारी जनता पार्टी नेपाल	18123
31	नेपाल जनभावना पार्टी	13173
32	राष्ट्रीय जनता दल नेपाल	12678
33	नेपाल जनता पार्टी	12531
34	मंगोल राष्ट्रीय संगठन	11578
35	नेपाल शान्ति क्षेत्र परिषद	10565
36	शान्ति पार्टी नेपाल	10511
37	राष्ट्रीय बिकास पार्टी	9329
38	नेपाल सुकुम्बासी पार्टी (लोकतान्त्रिक)	8322
39	नेपाल राष्ट्रीय बिकास पार्टी	8026
40	नेपाल दलित श्रमिक मोर्चा	7107
41	नेपाल की सोशलिस्ट पार्टी	6564
42	मुस्कान सेना नेपाल पार्टी	6292
43	नेपाली कांग्रेस (राष्ट्रवादी)	5721
44	नेपाल साम्यवादी दल	5478
45	नव जनवादी मोर्चा	5193
46	हिन्दू लोकतान्त्रिक पार्टी	4902
47	राष्ट्रवादी युवा मोर्चा	4772
48	नेपाल समता पार्टी	4697
49	लीग नेपाल शान्ति एकता पार्टी	4443
50	राष्ट्रवादी एकता पार्टी	4150
51	स-शक्ति नेपाल	3752
52	जनमुक्ति पार्टी, नेपाल	3396
53	नेपाल राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक दल	3216
54	नव-नेपाल प्रजातान्त्रिक दल	3016
	कुल प्राप्त वोट	10739078

कौन उठा ले जा रहा है ग़रीबों के बच्चों को?

निठारी की ख़ूनी कोठी के शिकार बने बच्चों के घरवालों की चीख़ों की गूँज अभी शान्त भी नहीं हुई थी कि एक बार फिर उन्हीं इलाक़ों से ग़रीबों-मेहनतकशों के बच्चों के ग़ायब होने का सिलसिला शुरू हो गया है। निठारी की ख़ौफ़नाक घटना सामने आने के बाद से अब तक डेढ़ साल में केवल ग़ाज़ियाबाद शहर से 300 बच्चे ग़ायब हो चुके हैं। इनमें से 121 बच्चे सिर्फ़ इस साल के पाँच महीनों में ग़ायब हुए हैं। नोएडा के आँकड़े इसमें शामिल नहीं हैं। और ये सिर्फ़ पुलिस के आँकड़े हैं। ग़ायब हुए बच्चों की असली तादाद इससे कहीं ज़्यादा है। ये सारे बच्चे ग़रीब और मेहनतकश लोगों के हैं जिन्हें आज भी पुलिस थानों से उसी तरह डरा-धमकाकर भगा दिया जाता है जिस तरह निठारी के पहले चल रहा था। याद कीजिये, उस समय भी बिल्कुल ऐसे ही ग़रीबों के बच्चे ग़ायब हो रहे थे और उनके माँ-बाप थानों से अपमानित करके भगा दिये जाते थे। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' करके ग़ाज़ियाबाद और नोएडा की दो दर्जन से ज़्यादा बस्तियों में जाँच-पड़ताल की गयी तो ये आशंकाएँ और मज़बूत हो गयीं कि सुनियोजित तरीके से ग़रीबों के बच्चों को उठाया जा रहा है। हमें ऐसी जानकारियाँ भी मिली हैं कि दिल्ली के संगम विहार, नरेला-बवाना, प्रेमनगर जैसी बहुतेरी ग़रीब बस्तियों से भी लगातार बच्चों के ग़ायब होने का सिलसिला जारी है।

इस बीच 'बिगुल मज़दूर दस्ता' और 'नौजवान भारत सभा' की कोशिशों से मीडिया में इस मुद्दे की व्यापक चर्चा होने के बाद पुलिस के अफ़सर बहानेबाज़ी और झूठ बोलने पर उतारू हो गये हैं। इन कोशिशों के चलते राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने उत्तर प्रदेश सरकार को लगातार ग़ायब होते बच्चों के मामले में नोटिस भेजा है। ग़ाज़ियाबाद के जिला जज ने भी पुलिस को निर्देश दिया है कि जिन गुमशुदा बच्चों के ग़रीब माँ-बाप एफ़आईआर दर्ज नहीं करा पाते उनकी रिपोर्ट तुरन्त लिखी जाये। लेकिन ऐसी सरकारी क़वायदों का नतीजा क्या होता है सभी को पता है। निठारी की घटना के बाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने विशेष समिति गठित की थी जिसने बच्चों के ग़ायब होने को लेकर कई सिफ़ारिशें की थीं। सुप्रीम कोर्ट ने भी इस सम्बन्ध दिशानिर्देश जारी किये हैं। लेकिन ग़रीबों के गुमशुदा बच्चों के एक भी मामले में किसी भी आदेश-निर्देश का पालन नहीं किया गया।

इन बच्चों को और कोई नहीं, पूँजीवादी समाज का राक्षस उठाकर ले जा रहा है। मुनाफ़े की हवस में पगलाया यह समाज इंसानी ख़ून का प्यासा है! औरतों और बच्चों के सस्ते श्रम को निचोड़ने से भी उसे जब सन्तोष नहीं होता तो वह उन्हें बेचने, उनके शरीर को नोचने-खसोटने और उनके अंगों को निकालकर, उनका ख़ून निकालकर बेच देने की हद तक गिर जाता है। निठारी एक चेतावनी थी पूरी इन्सानियत के लिए इसने फिर से हमें चेताया था कि इन्सानियत को बचाना है तो पूँजीवाद का नाश करना ही होगा! बच्चों की गुमशुदगी की लगातार बढ़ती घटनाएँ एक बार फिर याद दिला रही हैं कि ग़रीबों और मेहनतकशों के ज़िन्दा रहने की शर्त है समाज के इस ढाँचे की तबाही!

हम यहाँ बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा की ओर से जारी रिपोर्ट के कुछ हिस्से प्रस्तुत कर रहे हैं। इन संगठनों ने इस मुद्दे को लेकर ग़ाज़ियाबाद, नोएडा और दिल्ली में मेहनतकशों के बीच जनअभियान भी शुरू कर दिया है।

सम्पादक

कहाँ गये वे बच्चे?

नोएडा-ग़ाज़ियाबाद में ग़रीबों के गुमशुदा बच्चों पर एक रिपोर्ट

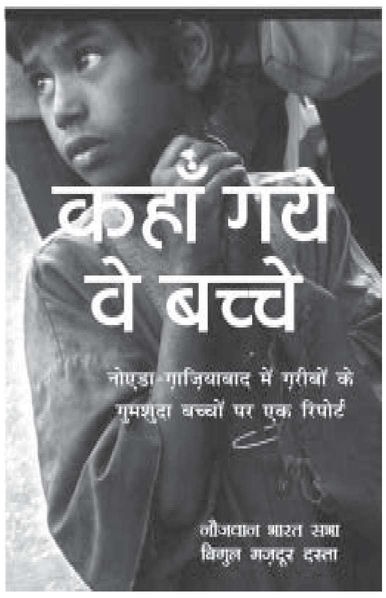

पिछले दिनों नोएडा और गाज़ियाबाद की कुछ मज़दूर बस्तियों और कालोनियों में अपने जनकार्य के दौरान नौजवान भारत सभा और बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं को कई ऐसे ग़रीब माँ-बाप मिले जो अपने गुमशुदा बच्चों की तलाश में भटक रहे थे। पुलिस थानों से उन्हें अपमानित करके और डरा-धमकाकर भगा दिया जाता था। किसी तरह अगर उनकी रिपोर्ट लिख भी ली गयी तो उस पर कोई कार्रवाई करने के बजाय पुलिसवाले या तो उनसे पैसे वसूलने की फिराक में रहते थे या उन्हें यूँ ही दौड़ाते रहते थे। उनकी आपबीती सुनकर हमारी आँखों के सामने करीब डेढ़ वर्ष पहले का वह मंज़र दौड़ गया जब एक मल्टीनेशनल कम्पनी के सी.ई.ओ. के बच्चे की तलाश में नोएडा से लेकर लखनऊ तक के आला अफ़सरों ने रात-दिन एक कर दिया था जबकि उसी नोएडा के दर्जनों गुमशुदा बच्चों के ग़रीब माँ-बाप को पुलिस महीनों से दौड़ा रही थी। इस घटना के चन्द रोज़ बाद ही निठारी की ख़ूनी कोठी के बाहर मिली हड्डियों, कपड़ों और बस्तों ने निशानदेही की थी कि आख़िर वे बच्चे कहाँ गुम हो जा रहे थे! मानव अंगों के विश्वव्यापी व्यापार, चाइल्ड पोर्नोग्राफ़ी और बाल वेश्यावृत्ति के फैलते धन्धे और बच्चों को अगवाकर उनसे भीख मँगवाने, बँधुआ मज़दूरी कराने या घरेलू नौकरों के रूप में बेच देने वाले गिरोहों तक की ख़बरें हमारे ज़ेहन में कौंध गयीं।

पिछले कुछ समय से ग़ाज़ियाबाद के अलग-अलग इलाक़ों से बच्चे ग़ायब होने की घटनाएँ अख़बारों में भी आती रही हैं। अख़बारी आँकड़ों के मुताबिक पिछले 4 माह में लापता हुए 53 बच्चों का अभी तक कोई सुराग नहीं मिला है। लापता होने वाले में 25 फीसद संख्या लड़कियों की है।

इस गम्भीर स्थिति को देखते हुए नौजवान भारत सभा और बिगुल मज़दूर दस्ता ने ग़ाज़ियाबाद ज़िला प्रशासन को ज्ञापन देकर इस मामले में कार्रवाई करने का आग्रह किया। इस पर भी कुछ न होते देख दोनों संगठनों ने साझा टीम गठित कर खुद इन मामलों की जाँच करने का फैसला किया। 12 से 18 मई के बीच जाँच टीम ने ग़ाज़ियाबाद और नोएडा की करीब दो दर्ज़न बस्तियों में जाँच-पड़ताल की।

इस छोटी-सी अवधि में ही जाँच टीम को ग़ाज़ियाबाद के नन्दग्राम, हर्ष विहार, विजयनगर, प्रताप विहार, संजय नगर, रईसपुर, मिर्ज़ापुर, राहुल विहार, खोड़ा, टिगरी, खड्डा, अर्थला, विकलांग कॉलोनी, घुकना, दीनदयालपुरी, सलारपुर, करहेड़ा, श्यामपार्क एक्सटेंशन, बुद्धविहार, नवादा, प्यारेलाल कॉलोनी आदि और नोएडा के भंगेल, बिशनपुरा, ममूरा, चोटपुर, छिजारसी के इलाक़ों में की गयी पूछताछ के दौरान करीब 45 गुमशुदा बच्चों के बारे में पता चला। इनमें से कुछ बच्चे काफी समय से लापता हैं लेकिन बड़ी संख्या ऐसे बच्चों की है जो हाल ही में गुम हुए हैं। ज़ाहिर है कि ग़ाज़ियाबाद और नोएडा से गुमशुदा बच्चों की वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा होगी।

इनमें से ज़्यादातर बच्चे मेहनतकश ग़रीब और निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के हैं जिनकी शिकायत पर न तो प्रशासन ध्यान देता है और न ही उनका दुख सनसनी के पीछे भागते मीडिया के लिए कोई ख़बर बन पाता है। इसलिए हम अब तक की अपनी जाँच-पड़ताल से मिली जानकारी को इस रिपोर्ट के ज़रिए मीडिया, बुद्धिजीवी समुदाय और इंसाफ़पसन्द नागरिकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। हमें उम्मीद है कि संवेदनहीनता, अलगाव और आत्मलीनता के इस माहौल में भी ऐसे बहुत से लोग हैं जो इस मुहिम में हमारा साथ देंगे।

●

साझा जाँच टीम ने जब मोहल्लों-बस्तियों में जाकर गुमशुदा बच्चों के परिजनों से मुलाकात की तो पुलिस-प्रशासन एवं अन्य एजेन्सियों की लापरवाही और जनविरोधी होने की हद तक आम ग़रीब जन के प्रति वर्गीय पूर्वाग्रहों की चौंकाने वाली घटनाएँ सामने आयीं।

(पेज 9 पर जारी)

किसके आसरे छोड़ें बच्चों को

4 साल की डॉली 7 वर्ष पहले अगस्त 2001 में गुम हो गयी थी। उसके पिता वाल्मीकि सिंह ओवरलॉक मशीन के ऑपरेटर हैं। माँ सिलाई कारीगर हैं। पति-पत्नी दोनों ही सुबह 8 बजे काम पर निकल जाते हैं और रात साढ़े नौ बजे से पहले काम से वापस आ नहीं पाते। ऐसे में वे बच्ची को पड़ोसियों के सहारे छोड़ कर काम करने चले जाते हैं। औसतन 12 से 14 घण्टे काम करने के बाद 2200 से 2500 रुपये माहवार कमाने वाले मज़दूरों के सामने यह मजबूरी होती है कि माँ-बाप दोनों ही काम करें। बच्चों को पड़ोसियों के सहारे या यूँही छोड़कर काम पर चले जाना उनकी लाचारी होती है। सरकार या फैक्ट्री मालिकों की तरफ से कामकाजू मजदूरों के बच्चों के लिए कहीं पर भी क्रेच की सुविधा उपलब्ध नहीं है।

ऐसे में मज़दूरों के बच्चे बिल्कुल अरक्षित होते हैं। इनके अलावा सड़कों के किनारे अस्थायी डेरों में रहने वाले निर्माण मज़दूरों के बच्चे और फुटपाथों, रेलवे और बस स्टेशनों पर सोने वाले ग़रीबों के बच्चे तो पूरी तरह अरक्षित होते हैं।

गुमशुदा बच्चे : कुछ दहलाने वाले आँकड़े

● राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार हर वर्ष देश में करीब 44,000 बच्चे गुम हो जाते हैं। इनमें से 11,000 बच्चों का कुछ पता नहीं चलता। गैर-सरकारी रिपोर्टों के अनुसार वास्तविक संख्या इन आँकड़ों से कहीं अधिक है क्योंकि बहुत से मामलों की रिपोर्ट ही दर्ज नहीं होती।

● यूरोपियन कौंसिल की एक रिपोर्ट (1611(2003)) के अनुसार 1980 के दशक से ही भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में ग़रीबों से मानव अंग ख़रीदे जाते रहे हैं। रिपोर्ट बताती है कि यूरोप में 15 से 30 प्रतिशत मरीज अंगों के मिलने के इंतज़ार में ही मर जाते हैं। अंग प्रत्यर्पण के लिए 2003 में जहाँ 3 साल का इंतजार करना होता था, सन 2010 तक मरीजों को 10 साल का इंतजार करना होगा। माँग और पूर्ति की इस विषमता को अन्तर्राष्ट्रीय गिरोहों ने अरबों डालर मुनाफे के धन्धे में बदल दिया है। मानव अंगों के लिए ग़रीबों के बच्चों की तस्करी की ख़बरें भारत ही नहीं तीसरी दुनिया के अनेक ग़रीब देशों से मिल रही हैं।

● स्त्रियों और बच्चों से जबरन वेश्यावृत्ति कराने का घिनौना धन्धा हथियारों और नशीली दवाओं के कारोबार के बाद दुनिया का सबसे बड़ा अवैध कारोबार बन चुका है। एक अनुमान के अनुसार बच्चों के यौन शोषण के लिए पश्चिमी देशों से हर वर्ष "पर्यटक" एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिकी देशों में जाते हैं। इंटरनेट पर अश्लील चित्रों के लिए बच्चों के शोषण का कारोबार अरबों डॉलर का हो चुका है।

● एक रिपोर्ट के मुताबिक एशिया से पिछले 30 वर्षों में 3 करोड़ बच्चों और महिलाओं को यौन व्यापार में जबरन धकेल दिया गया है। यह संख्या उन 1 करोड़ 20 लाख अफ्रीकियों से कहीं ज्यादा है जो 16वीं से 19वीं सदी के बीच गुलामों के तौर पर बेच दिये गये थे। अकेले भारत में लगभग 3 लाख बच्चों को बाल यौन कारोबार में इस्तेमाल किया जा रहा है। एक अन्य आकलन के मुताबिक विश्वस्तर पर बच्चों की खरीद-फरोख़्त की मण्डी 42 हजार करोड़ रुपये सालाना है।

कहाँ गये वे बच्चे?

(पेज 8 से आगे)

टीम को करीब 45 गुमशुदा बच्चों का पता चला। इनमें कुल 24 बच्चे ऐसे मिले जो पिछले 5 माह के दौरान लापता हुये। 10 लोग ऐसे मिले जिनकी एफ.आई.आर. तक दर्ज नहीं हुई थी या फिर देर से दर्ज की गयी थी। कुछ मामलों में तो पुलिस ने परिजनों के साथ गाली-गलौच की, धमकियाँ दीं या मारपीट तक की। 3 ऐसे मामले प्रकाश में आये जहाँ परिजनों ने अपहरण की शिकायत करते हुये नामज़द रिपोर्ट भी की लेकिन पुलिस ने एफ. आई.आर. दर्ज ही नहीं की या फिर उसे गुमशुदगी और बहला-फुसलाकर ले जाने के मामले में तब्दील कर दिया। 8 ऐसे गुमशुदा बच्चों का पता चला जिनके परिजन मज़दूरी की तलाश में कहीं और जा चुके थे। 4 ऐसे लोगों का भी पता चला जिन्होंने बच्चों की गुमशुदगी के बावजूद पुलिस के खौफ़ से रिपोर्ट ही दर्ज नहीं करायी।

एक ही बस्ती से 2 दिन में 3 बच्चे गायब

6 मई 2008 से 7 मई 2008 तक चरणसिंह कॉलोनी, विजय नगर, गाजियाबाद के पास स्थित झुग्गी से 2 दिन के अन्दर 3 बच्चे गुम हो गये। 6 मई को श्री राजवीर सिंह का 15 वर्षीय बेटा अमित उर्फ छोटू और श्री सुरेश का 13 वर्षीय बेटा बॉबी ग़ायब हो गये और 7 मई को श्री ज़ाकिर का 12 वर्षीय बेटा सलमान गुम हो गया। इन सभी के परिजनों ने पुलिस से दूर रहना ही ठीक समझा। पूछने पर उन्होंने कहा कि पुलिस में जाने से क्या होगा? बच्चा तो मिलेगा नहीं, उल्टा पुलिस हमें ही परेशान करेगी।

पुलिस ने पीड़ितों को ही किया प्रताड़ित

विकलांग कॉलोनी, नन्दग्राम, गाज़ियाबाद में रहने वाले पेशे से बेलदार अमरपाल, करहेड़ा के रिक्शाचालक मनोज शर्मा, नन्दग्राम के महिपाल और चाँदमारी टीला, विजयनगर, ग़ाज़ियाबाद की नूरजहाँ के साथ पुलिस का बर्ताव बताता है कि आख़िर क्यों कई माँ-बाप गुमशुदा बच्चों की रिपोर्ट लिखाने भी नहीं जाते हैं।

अमरपाल की 12 वर्षीय बेटी उमा 11 मई, 2008 से गुमशुदा है। जब वह अपनी बच्ची की गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखवाने नन्दग्राम चौकी पर पहुँचे तो उन्हें धमकाकर भगा दिया गया। मनोज की 8 वर्षीय बेटी निशा पिछले डेढ़ वर्ष से लापता है। थाने में पुलिसवालों ने मनोज पर हाथ उठाया और उनकी पत्नी को भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं। महिपाल सिंह का 12 वर्षीय बेटा दीपक कुमार 29 जुलाई, 2001 से लापता है। महिपाल एक फैक्ट्री वर्कर हैं। वे जब रिपोर्ट लिखाने गये तो पुलिसवालों ने उन्हें धमकाकर भगा दिया। एफआईआर दर्ज नहीं की गयी। जब उन्होंने इस मुद्दे को मीडिया की मदद से उठाया और प्रशासन के समक्ष अपनी बात रखी तब कहीं चार माह बाद उनकी एफआईआर दर्ज की गयी। इस दौरान चौकी से पुलिसवाले बीच-बीच में उनके घर आते और उन्हें धमकीभरे अन्दाज़ में अपने बाकी बचे बच्चों की फिक्र करने की नसीहत देते। नूरजहाँ की 5 वर्षीय बेटी गुलबशां 24 अक्टूबर 2006 से ग़ायब है। पुलिस ने एफआईआर तो दर्ज की, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं हुई। जब नूरजहाँ स्वयं ही मोहल्लों-बस्तियों में अपनी बेटी को ढूँढ़ने के लिए पूछताछ कर रही थी, तो पुलिसवालों ने उसे पकड़कर 3 दिन तक लॉकअप में डाल दिया।

सुराग मिलने पर क्या करती है "हमारी पुलिस"

गाज़ियाबाद में हिण्डन नदी के पश्चिमी पुश्ते और टिगरी गाँव के स्थानीय निवासियों ने बताया कि यहाँ से बच्चे उठने की घटनाएँ आम बात है। कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि शोर मच जाने पर बच्चाचोर, बच्चों को वहीं छोड़कर भाग जाते हैं। जब कभी ऐसे लोगों को पकड़कर पुलिस को सौंपा भी जाता है तो कोई कार्रवाई नहीं होती। कुछ ही दिनों में पुलिस को सौंपे गये लोग खुले घूमते हुए नज़र आते हैं।

23 जनवरी, 2008 से लापता 12 वर्ष के गणेश के पिता सुरेश ने बताया कि उनका बच्चा गुम होने के कुछ दिनों बाद स्थानीय लोगों को सुन्दरपुरी ग़ाज़ियाबाद में एक महिला के पास दिखाई दिया था। पूछताछ करने पर पहले तो महिला ने बताया कि उसके पास कोई बच्चा नहीं है, बाद में उसने कहा कि उसने बच्चे को दिल्ली के लिए ट्रेन में बिठा दिया था। महिला ने सुरेश के सामने कबूल किया कि वह बच्चों को उठाती है। शिकायत करने पर पुलिस ने महिला को हिरासत में लिया लेकिन जल्दी ही छोड़ दिया और अब वह महिला कहाँ गयी, इसका किसी को पता नहीं है। गणेश के पिता का कहना है कि इस पूरे मामले में पुलिस की कार्रवाई सन्देह के घेरे में है।

खोड़ा कालोनी, गाज़ियाबाद के (स्व.) मो. यूसुफ़ की 13 वर्षीय बेटी शाजिया 2 अप्रैल, 2008 से गुमशुदा है। नोएडा की एक फैक्ट्री में मज़दूरी करने वाली उसकी माँ ने बताया कि गली नं. 2 में रहने वाली एक बंगाली महिला बच्ची को काम दिलाने के बहाने अपने साथ ले गयी थी। उसके बाद से शाज़िया लौटकर नहीं आयी। शिकायत करने पर पुलिस ने उक्त महिला से पूछताछ की और बाद में पैसे लेकर उसे छोड़ दिया।

इन्द्रा कुंज, अर्थला, ग़ाज़ियाबाद के श्री मनेन्द्र कुमार गुप्ता ने बताया कि उनकी 5 वर्षीय बच्ची सुनीता 23 फरवरी 2008 को शाम 4 बजे घर के पास खेलते-खेलते कहीं गायब हो गयी। 27 फरवरी को थाना साहिबाबाद में एफआईआर दर्ज हुई। उन्होंने बताया कि रामनगर में रहने वाले एक व्यक्ति ने उनसे बच्ची को छोड़ने के लिए पाँच लाख रुपये फिरौती के माँगे। पुलिस को सूचना देने पर उस व्यक्ति की गिरफ्तारी तो हुई लेकिन मनेन्द्र जी के अनुसार वह रिश्वत देकर छूट गया। उनकी बच्ची का आज तक पता नहीं चला है।

"...थाने में आयें या अपना घर आग से बचायें?"

नोएडा के भंगेल में रहने वाले नरेश को अपना बेटा ढूँढ़ने की कीमत अपना घर गँवाकर अदा करनी पड़ी। उनका 15 वर्ष का बेटा भारत 6 अप्रैल, 2006 को भंगेल में लगा सर्कस देखने गया था। जब वह लौट कर नहीं आया तो उसकी खोज होने लगी। परिजनों ने सर्कस में पहुँचकर डांस मास्टर सोनू से बच्चे के बारे में पूछा, इस पर वह असहज हो गया और अपनी वैन से भागने की कोशिश की, लेकिन नाकाम रहा। लोगों ने पकड़कर उसे पुलिस के हवाले कर दिया। लेकिन पुलिसवालों ने कोई कार्रवाई करना तो दूर एफ.आई.आर. तक दर्ज नहीं की। नरेश ने हार नहीं मानी। मीडिया और पुलिस के बड़े अधिकारियों से लगातार मिलते रहे। अपने स्तर पर बच्चे को खोजते रहे। निठारी काण्ड हो जाने के बाद ही उनकी एफ.आई.आर. दर्ज की गई। इधर हाल तक उन्हें फोन पर धमकियाँ मिलती रहीं, "चुप हो जाओ नहीं तो बाकी लोगों को भी उठा लेंगे।" पुलिस में शिकायत करने पर भी उनकी नहीं सुनी गई।

नरेश के अनुसार 1 जनवरी, 2008 की रात उनके घर में आग से सबकुछ जल गया। उनका कहना है कि इसमें सर्कस के मालिक का हाथ है। जब उनका घर जल रहा था और थाने में सूचना दी गई तो जवाब मिला, "तुम लोग वहाँ क्या कर रहे हो, यहीं आ जाओ।"

पुलिसिया लापरवाही और वी.एस.एन.एल. की संवेदनहीन नौकरशाही

सेक्टर 9, विजयनगर, गाज़ियाबाद निवासी पुरुषोत्तम का 6 वर्षीय बेटा हिमांशु पुलिसिया लापरवाही और वी.एस.एन.एल. की नौकरशाही की भेंट चढ़ गया। हिमांशु 30 जुलाई 2006 को लापता हुआ था। एक फोन कॉल के ज़रिए परिजनों को सूचना मिली कि बच्चा मुल्तानी ढांडा, पहाड़गंज में है और सुबह 7 बजे तक परिजन पैसा देकर छुड़ा लें। पुलिस को सूचना दी गई। स्वयं पुरुषोत्तम जी को पुलिस के लिए जीप किराये पर लेनी पड़ी और तब भी पुलिसवाले नियत स्थान पर 3 घण्टे देरी से पहुँचे। वहाँ कोई नहीं मिला। आयी हुई फोन कॉल के बारे में और ब्योरा जानने के लिए जब वी.एस.एन.एल. में अर्ज़ी दी गई तो इस बेहद मानवीय मसले पर भी अधिकारियों ने कोई भी जानकारी देने से साफ मना कर दिया। उधर खोजबीन करने पर पता चला कि हिमांशु कुछ दिन तक पहाड़गंज में एक आदमी के पास था लेकिन फिर हिमांशु और उस आदमी का कोई सुराग नहीं लग पाया। कुछ माह पश्चात गुमशुदगी का इश्तेहार पढ़कर और हिमांशु का फोटो देखकर एक व्यक्ति ने धौलाना से फोन पर बताया कि बच्चा वहाँ चल रहे एक सर्कस में है। जब तक परिजन धौलाना पहुँच पाते, सर्कस की टोली वहाँ से जा चुकी थी।

इनमें से अधिकांश गुमशुदा बच्चों के मामले में एक तथ्य समान रूप से मौजूद है। ये सभी बच्चे मज़दूरों अथवा बेहद ग़रीब परिवारों से आते हैं। इन ग़रीबों, मजदूरों के प्रति पुलिस-प्रशासन का रवैया स्पष्ट तौर पर वर्ग पूर्वाग्रहों से प्रभावित दिखता है। ऐसा लगता है जैसे वे इन्हें नागरिक ही नहीं मानते। जाँच के दौरान पुलिस व प्रशासन के कुछ कर्मियों की टिप्पणियों से भी पता चला कि इस तबके के लोगों के प्रति उनके मन में कैसी हिकारत भरी होती है।

यह भी देखने में आया कि गुमशुदगी के मामलों में सुप्रीम कोर्ट द्वारा जारी हिदायतों का पुलिस ने किसी भी केस में पालन नहीं किया। प्रायः गुमशुदगी की घटनाओं को सामान्य घटना मानकर पुलिस उन्हें सिर्फ़ अपनी डेली डायरी में दर्ज कर मामले की इतिश्री कर लेना चाहती है।

अभी तक सरकार के स्तर पर भी ऐसी कोई पहलकदमी नहीं दिखाई देती कि वह स्वयं गुमशुदा बच्चों के प्रति संवेदनशील है और बच्चों के प्रति हो रहे अपराधों को गम्भीरता से लेती है। यही कारण है कि सरकार के पास गुमशुदा मामलों व बच्चों के प्रति होने वाले अपराधों के आधिकारिक तथ्यसंग्रह तक की कोई केन्द्रीय व्यवस्था नहीं है।

ऐसी स्थिति में नौजवान भारत सभा और बिगुल मजदूर दस्ता की माँग है :

1. **नोएडा व गाज़ियाबाद में गुमशुदा सभी बच्चों की सूची तैयार करके बच्चों की तलाश की जाये।**
2. **बच्चों की गुमशुदगी के बढ़ते मामलों की सी.बी.आई. से जाँच करायी जाये।**
3. **बच्चों की गुमशुदगी के मामले में सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों को सख्ती से लागू कराया जाये।**
4. **बच्चों की गुमशुदगी के मामलों में पुलिस-प्रशासन द्वारा वर्गीय पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर कार्य करने या लापरवाही बरतने की घटनाओं पर सख्त दण्डात्मक कार्रवाई की जाये।**
5. **मज़दूरों के बच्चों के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार की तरफ से क्रेच की व्यवस्था की जाये ताकि माँ-बाप उन्हें सुरक्षित माहौल में छोड़कर काम पर जा सकें।**

(2 जून को दिल्ली में जारी)

गुमशुदा और अपहृत बच्चों की तलाश के लिए उच्चतम न्यायालय के दिशानिर्देशों के कुछ प्रमुख बिन्दु

- गुमशुदा व्यक्ति का चित्र एक सप्ताह के भीतर अख़बारों व टेलीविज़न पर प्रकाशित-प्रसारित किए जाने के साथ ही रेलवे-बस स्टेशनों आदि पर भी प्रमुखता से प्रदर्शित किया जाना। लड़कियों के चित्र उनके अभिभावकों की लिखित अनुमति से ही प्रदर्शित किये जाने चाहिए।
- गुमशुदा व्यक्ति के पड़ोस, कार्यस्थल/स्कूल में तुरन्त जाँच-पड़ताल की जानी चाहिए तथा दोस्तों, परिचितों, रिश्तेदारों आदि से तत्काल पूछताछ की जानी चाहिए।
- शिकायत प्राप्त होने के तुरन्त बाद अस्पतालों में तलाश की जानी चाहिए।
- गुमशुदगी के एक माह के भीतर गुमशुदा व्यक्ति की जानकारी देने वाले के लिए सरकार की ओर से इनाम घोषित किया जाना चाहिए।

निठारी काण्ड के बाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा गुमशुदा बच्चो पर गठित समिति की कुछ प्रमुख अनुशंसाएँ

- बच्चों की गुमशुदगी को पुलिस द्वारा "प्राथमिकता वाला मुद्दा" बनाया जाना चाहिए। सभी राज्यों के पुलिस महानिदेशकों को अपने पुलिस बल को इस मुद्दे के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए कदम उठाने चाहिए।
- देश के हर पुलिस थाने में गुमशुदा व्यक्तियों की तलाश के लिए विशेष दस्ते या विशेष डेस्क स्थापित किए जाने चाहिए।
- गुमशुदा व्यक्तियों की तलाश के लिए उच्चतम न्यायालय के दिशानिर्देशों का पालन अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।
- सभी गुमशुदा व्यक्तियों की सूचना 24 घंटे के भीतर राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन.सी.पी.आर.सी.) को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास...

(पृष्ठ 7 से आगे)

की क्रान्तियों का मार्गदर्शक नहीं हो सकता जहाँ आधारभूत-अवरचनागत उद्योगों और वित्तीय पूँजी की शक्ति का काफ़ी विकास हो चुका है, भूमि-सम्बन्धों में पूँजीवादी बदलाव के बाद वर्ग-संश्रय बदल चुका है और जहाँ सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की जनसंख्या आज आबादी के अन्य वर्गों की अपेक्षा सबसे अधिक हो चुकी है। स्पष्ट है कि बदली विश्व-परिस्थितियों के बारे में ने.क.पा. (माओवादी) की सोच निहायत सतही, यान्त्रिक और बचकानी रही है। 'प्रचण्ड पथ' की अवधारणा के बड़बोलेपन को समझने के लिए संक्षेप में यह भी जान लेना ज़रूरी है कि इसके कौन से संघटक अवयव गिनाये जाते हैं!

'प्रचण्ड पथ' का एक संघटक अवयव यह बताया गया कि इसने दक्षिणपन्थी संशोधनवाद और कठमुल्लावादी संशोधनवाद इन दोनों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए क्रान्तिकारी मार्क्सवाद को आभ्यन्तरीकृत किया। लेकिन यह 'प्रचण्ड पथ' की नयी विशिष्टता नहीं, मार्क्सवाद की पुरानी विशिष्टता है। मार्क्सवाद अपने जन्मकाल से ही इन दोनों प्रकार के संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष करते हुए विकसित हुआ है।

'प्रचण्ड पथ' का दूसरा संघटक अवयव यह बताया गया कि इसने स्तालिन द्वारा प्रस्तुत एकाश्मी पार्टी की धारणा को ख़ारिज करके दो लाइनों के संघर्ष और आन्तरिक संघर्ष की सजीव प्रक्रिया से लैस पार्टी की धारणा को स्थापित किया। यह भी एक निहायत हास्यास्पद बात है। दो लाइनों के संघर्ष की सजीव आवयविक व्यवस्था से लैस पार्टी की सोच पार्टी की लेनिनवादी अवधारणा का बुनियादी सूत्र है, जिससे स्तालिन काल में कुछ विचलन पैदा हुआ। पुनः माओ त्से-तुङ ने इस अवधारणा को न केवल स्थापित किया बल्कि सांस्कृतिक क्रान्ति के दौर तक आते-आते नयी ऊँचाइयों तक विकसित किया। प्रचण्ड का इसमें कोई भी मौलिक अवदान नहीं माना जा सकता। पार्टी गठन के सन्दर्भ में ने.क.पा. (माओवादी) का यह दावा है कि नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास के वस्तुपरक विश्लेषण के द्वारा उसने पार्टी एकता को नयी ऊँचाइयों तक विकसित किया और यह भी 'प्रचण्ड पथ' की एक विशिष्टता है। इस दावे की सच्चाई क्या है? मोहन बिक्रम सिंह द्वारा पुष्पलाल को 'ग़द्दार' घोषित करने से अलग हटकर ने.क.पा. (माओवादी) ने उनकी सकारात्मक भूमिका का सही मूल्याँकन रखा, लेकिन साथ ही उसने पुष्पलाल के दक्षिणपन्थी भटकावों की पूरी तरह से अनदेखी की। इस मायने में भी ने.क.पा. (एकता केन्द्र) द्वारा प्रस्तुत मूल्यांकन अधिक सन्तुलित है। जहाँ तक पार्टी एकता का प्रश्न है, 'प्रचण्ड पथ' के सूत्रीकरण ने उसके रास्ते में कुछ नयी बाधाएँ ही पैदा कीं।

ने.क.पा. (माओवादी) दक्षिण एशिया सोवियत संघ के अपने प्रस्ताव को भी एक सकारात्मक अवदान मानते हुए इसे 'प्रचण्ड पथ' का एक घटक तत्व बताया। इस सन्दर्भ में पहली बात तो यह है कि आज इस प्रस्ताव की कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं है और यह केवल एक मंसूबावादी विचार ही हो सकता है। ऐसा कोई संघ दक्षिण एशिया के देशों में सर्वहारा क्रान्ति के बाद ही बन सकता है और वह भी तब, जबकि उन सभी देशों की सर्वहारा सत्ताएँ उसे स्वीकार करें। दूसरी बात यह कि ऐसे किसी क्षेत्रीय संघ का गठन विश्व सर्वहारा क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास की अपरिहार्य शर्त या एकमात्र रास्ता नहीं हो सकता। ऐसी सम्भावना हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। तीसरी बात यह कि क्रान्ति के पहले और क्रान्ति के बाद दुनियाभर की कम्युनिस्ट पार्टियों द्वारा अन्तरराष्ट्रीयतावादी भावना से एक दूसरे की मदद करना और किसी प्रकार के अन्तरराष्ट्रीय मंच का गठन करना एक बात है और दक्षिण एशिया सोवियत संघ जैसी किसी चीज़ का निर्माण सर्वथा अलग बात है। चौथी बात यह कि दक्षिण एशिया के बड़े, विकसित देशों में क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ अभी क्रान्ति को नेतृत्व दे पाने की स्थिति से काफ़ी दूर हैं और आज ऐसे किसी संघ की बात सोचना ख़्याली पुलाव से अधिक कुछ भी नहीं है। पाँचवी बात यह कि आज इस प्रकार की बातें करना बड़े देशों की पार्टियों के 'बड़े भाइयों जैसे रवैये' को और क्रान्ति के आयात-निर्यात की धारणा को बढ़ावा देने का काम कर सकता है।

'प्रचण्ड पथ' की एक मुख्य विशेषता यह बतायी गयी कि इसने सशस्त्र विद्रोह की कतिपय रणनीतियों को दीर्घकालिक लोकयुद्ध के क्रान्ति-मार्ग के फ़्रेमवर्क में समाहित कर लिया। सच्चाई यह है कि ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने जब इस प्रकार के संश्लेषण की बात की थी तो माओवादी नेतृत्व ने सारसंग्रहवादी कहते हुए उनकी आलोचना की थी। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने 1996 के अपने पहले राष्ट्रीय सम्मेलन में ही यह बात कही थी। साथ ही, 'प्रचण्ड पथ' इस प्रकार के संश्लेषण को इक्कीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों की एक सार्वभौमिक विशिष्टता बताता है जबकि ऐसा मानने का कोई भी तर्कसंगत आधार नहीं है।

रणनीतिक दृढ़ता और रणकौशलात्मक लचीलेपन को ने.क.पा. (माओवादी) 'प्रचण्ड पथ' की एक और विशिष्टता बताती है। यह विशिष्टता लेनिन के ज़माने से ही सर्वहारा पार्टियों की परिपक्वता की निशानी मानी जाती रही है। यह कोई मौलिक खोज नहीं है। सच्चाई यह है कि 'रणकौशलात्मक लचीलेपन' के नाम पर ने.क.पा. (माओवादी) अपनी नीतियों में अक्सर बेहद अस्थिरता का संकेत देती रही है और उसका नेतृत्व अक्सर निहायत ग़ैरज़िम्मेदाराना ढंग से विचारधारात्मक-रणनीतिक उसूली मसलों को भी रणकौशल और कूटनीति का मसला बना देता रहा है। यह प्रवृत्ति यदि बनी रही तो ख़तरनाक ढंग से दक्षिणपन्थी विपथगमन का सबब बन सकती है। 1999 में ने.क.पा. (माओवादी) ने वामपन्थियों, देशभक्तों और जनवादी ताक़तों की संयुक्त क्रान्तिकारी सरकार का रणकौशलात्मक नारा दिया। बाद में तत्कालीन संविधान को रद्द करने, संसद भंग करने, अन्तरिम सरकार के गठन और संविधान सभा का रणकौशलात्मक नारा आया। उसके बाद उन्होंने सर्व-पार्टी सम्मेलन, अन्तरिम सरकार और एक 'लोक संविधान की गारण्टी' का नारा दिया। इसके बाद एक केन्द्रीय लोक सरकार का रणकौशलात्मक नारा दिया गया, जिसे ढाई वर्ष बाद पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन ने मुख्य रणनीतिक नारा बना दिया।

ने.क.पा. (माओवादी) रणकौशल ही नहीं, बल्कि विचारधारा और राजनीति के बुनियादी उसूली प्रश्नों पर भी ग़ैरउसूली लचीला रुख़ अपनाती रही है। 2003 तक उनका आकलन था कि जनयुद्ध अब जल्दी ही रणनीतिक आक्रमण के दौर में प्रविष्ट हो जायेगा, फिर इस आकलन से पीछे हटते हुए उन्हें संविधान सभा के चुनाव और संघात्मक गणराज्य की स्थापना के रणकौशलात्मक नारे तक आना पड़ा। लेकिन फिर इस रणकौशलात्मक अवस्थिति से आगे बढ़कर उनका नेतृत्व सर्वहारा जनवाद की ही नयी अवधारणा प्रस्तुत करने लगा और बहुदलीय संसदीय जनवादी प्रणाली और बहुदलीय प्रतिस्पर्द्धा को उसका प्रमुख आधार बताते हुए प्रकारान्तर से सोवियत और कम्यून व्यवस्था की ग्रासरूट से लेकर शीर्ष तक की सर्वहारा जनवादी प्रणाली की अपरिहार्यता को ख़ारिज करने की दक्षिणपन्थी अवस्थिति के निकट जा पहुँचा। ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व की एक विशिष्टता यह रही है कि आलोचना होने पर वह अपनी अवस्थितियों को बार-बार बदलने वाले बयान भी देता रहा है। एक दूसरी विशिष्टता यह रही है कि विगत दस वर्षों के दौरान उन्होंने अपनी कई पुरानी अवस्थितियों को बिना खुली आत्मालोचना या आत्मविश्लेषण के बदल लिया है और ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की अवस्थितियों को चुपचाप अपना लिया है। अपनी "वामपन्थी" ग़लतियों को कोई भी पार्टी जब इस प्रकार की पैबन्दसाज़ी से या इंच-इंच पीछे खिसककर ठीक करने की कोशिश करती है तो क़तारों की राजनीतिक शिक्षा नहीं हो पाती है और पेण्डुलम के दूसरे छोर तक जा पहुँचने और पार्टी के दक्षिणपन्थी 'प्रैगमेटिज़्म' के पंककुण्ड में जा गिरने का ख़तरा पैदा हो जाता है।

ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने.क.पा. (माओवादी) की कमोबेश इसी आशय की आलोचना लगातार रखती रही है। अधिकांश मामलों में ने.क.पा. (माओवादी) ने धीरे-धीरे ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की ही अवस्थितियों को अपना लिया है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि रणकौशलात्मक नारे के रूप में संविधान सभा और गणतन्त्र के नारे को सबसे पहले ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने ही आगे बढ़ाया (रणनीतिक नारे के रूप में तो यह बात 1950 से ही नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी कर रही थी)। माओवादियों ने गणतन्त्र के संस्थागत विकास का नारा दिया। एकता केन्द्र ने अन्तरिम सरकार, संविधान सभा और गणतन्त्र का नारा इस तर्क के साथ दिया कि इससे राजनीतिक प्रणाली का फैसला स्वयं जनता करेगी तथा इस नारे का साम्राज्यवादी और अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ भी विरोध नहीं कर सकेंगी। माओवादियों के विपरीत एकता केन्द्र निर्णायक युद्ध द्वारा केन्द्रीय सत्ता पर क़ब्ज़ा सम्भव नहीं मानती थी। बाद में माओवादी भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे और क्रान्ति की दीर्घकालिकता की नयी समझ के साथ संविधान सभा, गणतन्त्र और अन्तरिम सरकार की माँग को स्वीकार कर वे सात पार्टियों के गठबन्धन के साथ समझौते की मेज़ पर आये।

चुनाव प्रणाली को लेकर ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का शुरू से ही स्टैण्ड था कि पूर्ण समानुपातिक प्रणाली से चुनाव होना चाहिए। एक महीने तक ने.क.पा. (माओवादी) इस माँग से सहमत थी, लेकिन नवम्बर में चुनाव की तिथि घोषित होने के बाद उन्होंने अन्तरिम संसद से गणतन्त्र की घोषणा और पूर्ण समानुपातिक प्रणाली की माँग छोड़ दी और गठबन्धन के अन्य दलों के साथ हो लिये। लेकिन कुछ समय बाद फिर ने.क.पा. (माओवादी) के प्लेनम ने यह प्रस्ताव पारित किया कि अगर गणतन्त्र की घोषणा नहीं हुई और पूर्ण समानुपातिक प्रणाली के आधार पर चुनाव नहीं कराया गया तो उसमें वे भागीदारी नहीं करेंगे। फिर कुछ समय बाद वे कहने लगे कि जून 2007 के बाद संविधान सभा के चुनाव के लिए परिस्थिति अनुकूल नहीं रह गयी है। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का तब मानना था कि क्रान्तिकारी वाम के समक्ष तीन विकल्प हैं : पहला, संविधान सभा के चुनाव में भागीदारी, दूसरा, जनउभार के द्वारा क्रान्तिकारी वाम नेतृत्व में गणतन्त्र की स्थापना और तीसरा, राजनीतिक तबाही। अप्रैल 2006 का जनादेश पहले विकल्प के लिए है और परिस्थितियाँ भी इसी के लिए अनुकूल हैं। यदि साम्राज्यवादियों-प्रतिक्रियावादियों की साज़िशों से पहला विकल्प सफल नहीं हो सकेगा तो जनता इसे स्वयं समझकर दूसरे विकल्प का रास्ता पकड़ेगी। ने.क.पा. (माओवादी) भी आख़िरकार इसी निष्कर्ष पर पहुँची।

जनयुद्ध के दौरान माओवादी क़तारों के बीच सामाजिक फासीवादी और सैन्यवादी प्रवृत्तियाँ विकसित होने और उनके द्वारा बल-प्रयोग की अवधारणा को ग़लत ढंग से लागू करने की (यानी कई मामलों में मित्र शक्तियों और जनता के ख़िलाफ़ भी बल प्रयोग करने की) ने.क.पा. (एकता केन्द्र) आलोचना करती रही। उसका कहना था कि इसकी विचारधारात्मक जड़ सर्वहारा जनवाद के प्रति माओवादियों के ग़लत दृष्टिकोण में निहित है। पार्टी-निर्माण की प्रक्रिया को लेकर भी ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने सवाल उठाया और यह आलोचना रखी कि पार्टी के भीतर वैचारिक-राजनीतिक शिक्षा पर ज़ोर न देने और कम्युनिस्ट मूल्यों का प्रचार नहीं करने के कारण माओवादी क़तारों में वीरता और जुझारूपन के बावजूद नैतिक पतन की घटनाएँ सामने आती रही हैं। कालान्तर में ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व ने भी इन आलोचनाओं को एक हद तक स्वीकार किया और 'क्रान्ति के भीतर क्रान्ति' की आवश्यकता पर बल देना शुरू किया। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) माओवादियों के राजनीतिक व्यवहार की विसंगतियों पर बल देते हुए यह मानती रही है कि उनके भीतर फ़िलहाल तीन प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं : संकीर्णतावादी जड़सूत्रवादी प्रवृत्ति, दक्षिणपन्थी 'प्रैग्मेटिज़्म' की प्रवृत्ति और क्रान्तिकारी प्रवृत्ति। फ़िलहाल क्रान्तिकारी प्रवृत्ति प्रधान है, लेकिन दक्षिणपन्थी भटकाव का भी पर्याप्त ख़तरा मौजूद है।

इन मतभेदों के बावजूद, संविधान सभा के चुनाव के एक वर्ष पहले तक लाइन और रणनीति के बुनियादी सवालों पर दोनों संगठनों के बीच बुनियादी एकता बनने लगी थी और स्थिति ऐसी बन चुकी थी कि अन्य मतभेदों पर एक पार्टी के भीतर संघर्ष चलाया जा सकता था। इस आकलन के आधार पर, क्रान्ति के दीर्घकालिक हित में एक वर्ष पहले ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने पार्टी एकता के लिए पहल की। ने.क.पा. (माओवादी) ने शुरू में तो इसे गम्भीरता से नहीं लिया, लेकिन फिर वार्ता आगे बढ़ी। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का आकलन था कि दोनों पार्टियों में एकता या कम से कम तालमेल की स्थिति में क्रान्तिकारी वाम के पक्ष में देशव्यापी लहर पैदा की जा सकती थी, अन्य छोटी क्रान्तिकारी वाम पार्टियों और ने.क.पा. (एमाले) को भी गठबन्धन में आने को विवश किया जा सकता था और क्रान्तिकारी वाम धारा दो तिहाई बहुमत भी हासिल कर सकती थी। आगे चलकर चुनाव परिणामों ने सिद्ध कर दिया कि यह आकलन काफ़ी हद तक सही था। चुनाव के ठीक पहले एकता के लिए नीतिगत सहमति पर प्रचण्ड और प्रकाश का संयुक्त वक्तव्य जारी हुआ, चुनाव के लिए संयोजन समिति बनी और तालमेल का निर्णय हुआ। लेकिन ने.क.पा. (माओवादी) के संकीर्णतावादी रुख़ के कारण यह प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ सकी और चुनाव में क्रान्तिकारी वाम के मतों में बँटवारे के चलते भारी नुक़सान हुआ। ने.क.पा. (माओवादी) ने चुनाव में कुल 220 सीटें हासिल कीं, जबकि ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के जनमोर्चा, नेपाल को 7 सीटें मिलीं। क्रान्तिकारी वाम धारा के अन्य दलों मोहन बिक्रम सिंह के राष्ट्रीय जनमोर्चा को 4, नेपाल मज़दूर किसान पार्टी को 4 और ने.क.पा. (एकीकृत) को 2 सीटें मिलीं। चूँकि जनता ने ने.क.पा. (माओवादी) को ही जीत की सम्भावना की दृष्टि से बेहतर विकल्प मानते हुए मत दिया, इसलिए सीटों की दृष्टि से ने.क.पा. (एकता केन्द्र) की शक्ति और जनाधार का अनुमान लगाना ग़लत होगा। बहरहाल, क्रान्तिकारी वाम धारा के मतों के विभाजन के कारण ही त्रिशंकु संसद की स्थिति पैदा हुई, इतना तय है।

नये संविधान के निर्माण के बारे में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का चुनाव के पहले से ही यह नज़रिया था कि ऐसी स्थिति में जबकि बुर्जुआ ताक़तें पारम्परिक बुर्जुआ गणतन्त्र स्थापित करने की हरचन्द कोशिश कर रही हैं, एक नवजनवादी संविधान सम्भव नहीं होगा। अतः वर्तमान संक्रमणकालीन परिस्थिति का इस्तेमाल करके ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुखी गणतन्त्र बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसमें तीन बातों पर ज़ोर दिया जाना चाहिए : (1) राष्ट्रीय स्वाधीनता/सम्प्रभुता का प्रश्न, सभी असमान सन्धियों को ख़ारिज करना, (2) राजनीतिक अधिकार ही नहीं बल्कि आर्थिक लोकतन्त्र भी, और (3) राज्य और समाज के पुनर्गठन का काम। वर्तमान परिस्थितियों में ने.क.पा. (माओवादी) भी कमोबेश इस दृष्टिकोण से सहमत है और आम सहमति के इस आधार पर दोनों संगठनों के बीच एकता की प्रक्रिया एक बार फिर आगे बढ़ रही है।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि

(पृष्ठ 11 पर जारी)

नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास...

(पृष्ठ 10 से आगे)

सुदृढ़-सुसंगत विचारधारात्मक स्थिति और परिस्थितियों के अधिक सटीक आकलन के बावजूद आख़िरकार ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के पीछे छूट जाने के कारण क्या हो सकते हैं? यह स्पष्ट होना चाहिए कि लाइन का सही होना पार्टी की सफलता की बुनियादी गारण्टी तो है, लेकिन वही अपनेआप में सबकुछ नहीं होती। एक बार लाइन तय होने के बाद क़तारें निर्णायक होती हैं, पर यह स्वतः नहीं होता। क़तारों और ग्रासरूट संगठनकर्ताओं को उस लाइन पर अमल के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित करना नेतृत्व की प्रमुख ज़िम्मेदारी होती है। यदि ऐसा सही ढंग से न किया जाये तो जनता को गोलबन्द और संगठित करने के स्तर पर कतारों और ग्रासरूट संगठनकर्ताओं में पहलक़दमी, त्वरित निर्णय-क्षमता और जुझारूपन का अभाव पैदा होने लगता है। हमें प्रतीत होता है कि एक हद तक ने.क.पा. (एकता केन्द्र) के साथ यह बात रही है। दूसरी बात, क्रान्तिकारी संकट के विस्फोट के बारे में पार्टी के आकलन में यदि थोड़ी भी ग़लती हो और वह सही समय पर सटीक पहल लेने से चूक जाये तो फिर वर्षों के लिए पीछे छूट जाती है। संयुक्त मोर्चा और जनान्दोलन को विकसित करने के मामले में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) काफ़ी आगे थी, लेकिन जन मुक्ति सेना गठित करने और जनयुद्ध शुरू करने के मामले में ने.क.पा. (माओवादी) ने एकदम सही समय पर सटीक पहल की और इस मामले में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) का परिस्थितियों का आकलन ठीक नहीं निकला। वह जनयुद्ध का कोई वैकल्पिक मॉडल भी नहीं खड़ा कर सकी। ख़ासतौर पर 2001 के दरबार हत्याकाण्ड के बाद देश की परिस्थितियाँ इसके लिए अनुकूल थीं कि जनान्दोलन के साथ-साथ ने.क.पा. (एकता केन्द्र) जनयुद्ध भी शुरू कर दे, पर वह ऐसा नहीं कर सकी। सही आकलन, त्वरित निर्णय और पहलक़दमी के इस अभाव के चलते वह पीछे छूट गयी और ने.क.पा. (माओवादी) के नेतृत्व और क़तारों के सैन्यवादी-दुस्साहसवादी भटकाव और अन्य विचारधारात्मक-राजनीतिक ग़लतियों की आलोचना करके उन्हें ठीक करने का अवसर देने तथा राजतन्त्रवादी एवं बुर्जुआ ताक़तों के हमलों से जनयुद्ध की उपलब्धियों को बचाने की कोशिश करना उनका क्रान्तिकारी कार्यभार बनकर रह गया। ने.क.पा. (माओवादी) के तमाम भटकावों के बावजूद, क़तारों की पहलक़दमी और जुझारूपन उनकी एक बहुत बड़ी विशिष्टता रही है। जनयुद्ध शुरू करने का उनका निर्णय सही था और व्यवस्था के संकट का उन्हें भरपूर लाभ मिला। जनयुद्ध को निर्णायक विजय की दिशा में आगे बढ़ाने के ग़लत आकलन को उन्होंने समय रहते बदल लिया और संविधान सभा के चुनाव में भागीदारी के लिए तैयार हो गये। इसका उन्हें भरपूर लाभ मिला। एक क्रान्तिकारी विकल्प के तौर पर जनता को उन्हीं की सफलता में विश्वास था, इसलिए ने.क.पा. (एकता केन्द्र) और कुछ अन्य क्रान्तिकारी वाम दलों की राजनीति का समर्थन करने वाले जनसमुदाय के एक बड़े हिस्से ने भी चुनाव में ने.क.पा. (माओवादी) को ही अपना वोट दिया। अब नेपाल की जनवादी क्रान्ति के अग्रवर्ती विकास का काफ़ी कुछ दारोमदार इस बात पर निर्भर है कि भविष्य में क्रान्तिकारी वाम धारा की ये दो मुख्य पार्टियाँ कितनी जल्दी और कितनी दृढ़ता के साथ अपनी एकता-प्रक्रिया को अंजाम तक पहुँचाती हैं। माओ द्वारा निर्दिष्ट क्रान्ति के तीन चमत्कारी हथियारों में से ने.क.पा. (माओवादी) ने पार्टी और जनमुक्ति सेना के गठन के मामले में अनुभव हासिल किया है और क़तारों की पहलक़दमी और जुझारूपन उसकी विशिष्टता है। ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ने पार्टी और संयुक्त मोर्चे के निर्माण तथा जनान्दोलन के मामले में महारत हासिल की है और इसके नेतृत्व की विचारधारात्मक-राजनीतिक समझ की सुसंगति और दृढ़ता इसकी विशिष्टता है। भविष्य में यदि इनकी एकता हो जाती है तो एक पार्टी के भीतर तमाम भटकावों के विरुद्ध दो लाइनों का संघर्ष चलाना और पार्टी को आगे बढ़ाना सुगम होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो ने.क.पा. (माओवादी) की सर्वहारा जनवाद विषयक धारणा में आज जो दक्षिणपन्थी विच्युति दीख रही है और बहुदलीय जनतन्त्र के प्रति जो अतिरिक्त आग्रह या झुकाव पैदा हुआ है, वह उसे विपथगामी भी बना सकता है। ऐसी स्थिति में, ने.क.पा. (एकता केन्द्र) यदि अपनी क़तारों और संगठनकर्ताओं को जुझारूपन की क्षमता से लैस कर सके, सही समय पर सही निर्णय त्वरित ढंग से ले सके और हथियारबन्द संघर्ष की सही ढंग से तैयारी कर सके तो नया क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी विकल्प के रूप में सामने आ सकता है और नेपाली क्रान्ति को आगे की मंज़िलों में विकसित कर सकता है। लेकिन अभी तो यही आशा है और यही अपेक्षा भी, कि इन दोनों पार्टियों का नेतृत्व वक़्त के तक़ाज़े को समझेगा और नेपाली जनता की क्रान्तिकारी आकांक्षाओं को साकार करने के लिए अपनी एकता की प्रक्रिया को गम्भीरता से और तेज़ गति के साथ आगे बढ़ायेगा।

इस समूची तस्वीर को और अधिक साफ़ करने के लिए हम आज नेपाल में मौजूद प्रमुख संशोधनवादी पार्टियों और क्रान्तिकारी वामपन्थी पार्टियों की और उनके बीच जारी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया की आगे संक्षेप में चर्चा करेंगे।

नेपाल में संशोधनवादी और क्रान्तिकारी वाम शिविर और ध्रुवीकरण की जारी प्रक्रिया

अब तक की चर्चा से स्पष्ट है कि ने.क.पा. (माओवादी) और ने.क.पा. (एकता केन्द्र) ही नेपाली क्रान्तिकारी वाम शिविर की दो सर्वप्रमुख शक्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त एक अन्य प्रमुख पार्टी मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाली ने.क.पा. (मसाल) है, जिसका जनसंगठन राष्ट्रीय जनमोर्चा है। राष्ट्रीय जनमोर्चा ने विगत चुनाव में चार सीटें हासिल की हैं। इस पार्टी की 1991 तक की चर्चा लेख में ऊपर आ चुकी है। 1990 के जनान्दोलन के समय मोहन बिक्रम सिंह नेपाली कांग्रेस के साथ सहयोग के प्रश्न पर संयुक्त वाम मोर्चा से असहमत थे। उन्होंने संविधान सभा की माँग करते हुए राजशाही के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष पर ज़ोर दिया, लेकिन इसके लिए कभी कोई तैयारी नहीं की। 1991 के आम चुनाव का उन्होंने बहिष्कार किया, लेकिन 1994 में मध्यावधि चुनाव में हिस्सा लिया। 2002 में ने.क.पा. (मसाल) का ने.क.पा. (एकता केन्द्र) में विलय हो गया और मोहन बिक्रम सिंह ने.क.पा. (एकता केन्द्र-मसाल) के महासचिव बने। 2006 में मोहन बिक्रम सिंह सात पार्टियों के गठबन्धन में शामिल होने के विचार का विरोध करते हुए पुनः अलग हो गये। 2007 में सातवीं पार्टी कांग्रेस करके मोहन बिक्रम धड़े ने फिर से ने.क.पा. (मसाल) के तौर पर काम करना शुरू किया। मोहन बिक्रम सिंह दक्षिणपन्थी और "वामपन्थी" अतियों के बीच अननुमेय ढंग से दोलन करते हुए आज काफ़ी हद तक अपनी साख गँवा चुके हैं। ने.क.पा. (चौथी कांग्रेस) के संस्थापक के रूप में सही विचारधारात्मक अवस्थिति अपनाकर तथा कम्युनिस्ट क़तारों की एक पीढ़ी तैयार कर उन्होंने कम्युनिस्ट आन्दोलन की जितनी महत्त्वपूर्ण सेवा की, उससे कहीं अधिक उन्होंने इतिहास के एकांगी मूल्यांकन की अपनी पद्धति और नौकरशाहाना संकीर्णतावादी सांगठनिक कार्यशैली के चलते नुक़सान पहुँचाया। इन दिनों दूसरे अतिवादी छोर पर खड़े होकर ने.क.पा. (माओवादी) के विरोध को उन्होंने अपना प्रमुख कार्यभार बनाया हुआ है। लेकिन दो प्रमुख पार्टियों में एकता की प्रक्रिया यदि आगे बढ़ती है तो इस पार्टी को भी देर-सबेर उस प्रक्रिया का भागीदार बनना पड़ेगा, या फिर नेतृत्व को किनारे लगाकर क़तारों का बहुलांश मुख्य धारा में शामिल हो जायेगा।

एक अन्य संगठन नेपाल मज़दूर-किसान पार्टी की ऊपर चर्चा की जा चुकी है। इस संगठन का नेतृत्व नेपाल की सामाजिक-आर्थिक संरचना में आये बदलावों के बारे में तो संजीदगी से सोचता है, लेकिन साथ ही विचारधारात्मक मामलों में दक्षिणपन्थी भटकाव का शिकार है तथा पार्टी गठन के सन्दर्भ में संकीर्ण ग्रुप-मानसिकता और अलगाववादी मानसिकता का शिकार है। इसका आधार संकीर्ण क्षेत्रीय ढंग से मुख्यतः काठमाण्डो घाटी में भक्तपुर तक सिमटा हुआ है।

क्रान्तिकारी वाम शिविर का एक अन्य संगठन ने.क.पा. (एकीकृत) है। विगत चुनाव में इस संगठन ने भी दो सीटें हासिल की थीं। इसका गठन 2007 में तीन ग्रुपों के विलय से हुआ था : ऋषि कत्तल के नेतृत्व में ने.क.पा. (माले) (सी.पी. मैनाली) से अलग हुआ एक ग्रुप, राजबीर के नेतृत्व में ने.क.पा. (एकता केन्द्र) से अलग हुआ एक ग्रुप और सीताराम तमांग के नेतृत्व में ने.क.पा. (मालेमा-केन्द्र) से अलग हुआ एक ग्रुप।

एक अन्य कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन ने.क.पा. (मालेमा) की स्थापना 1981 में कृष्ण दास श्रेष्ठ ने की थी जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। बीच में इससे अलग होकर एक अन्य ग्रुप नन्द कुमार परसाई के नेतृत्व में नेपाल साम्यवादी पार्टी (मालेमा) बनी थी जिसका 2005 में फिर ने.क.पा. (मालेमा) के साथ विलय हो गया और ने.क.पा. (मालेमा-केन्द्र) अस्तित्व में आया। इसमें से अलग होकर सीताराम तमांग ग्रुप ने.क.पा. (एकीकृत) में शामिल हो गया। ने.क.पा. (मालेमा-केन्द्र) का मार्च 2007 में ने.क.पा. (माओवादी) में विलय हो गया।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य भी छोटी-छोटी क्रान्तिकारी वामपन्थी पार्टियाँ हैं जो नेपाल की राष्ट्रीय राजनीति में अपना विशेष स्थान या महत्त्व नहीं रखतीं। इनका भविष्य मुख्य पार्टियों के बीच एकता प्रक्रिया के अग्रवर्ती विकास पर निर्भर करता है।

जहाँ तक संशोधनवादी वाम शिविर की बात है, वहाँ भी ध्रुवीकरण की प्रक्रिया जारी रही है। ज़ाहिर है कि ने.क.पा. (एमाले) ही सबसे बड़ी संशोधनवादी पार्टी है। दूसरे नम्बर पर सी.पी. मैनाली के नेतृत्व वाली ने.क.पा. (माले) आती है।

1986 में सहाना प्रधान के नेतृत्व वाली ने.क.पा. (पुष्पलाल) और ने.क.पा. (मनमोहन अधिकारी) की एकता के बाद ने.क.पा. (मार्क्सवादी) के अस्तित्व में आने और फिर 1991 में ने.क.पा. (माले) के साथ उसकी एकता के बाद ने.क.पा. (एमाले) के गठन की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। पुनः 1991 में ही ने.क.पा. (एमाले) से अलग होकर प्रभुनाथ चौधरी ने ने.क.पा. (मार्क्सवादी) का गठन किया। 2005 में ने.क.पा. (युनाइटेड) के साथ इसकी एकता के बाद ने.क.पा. (युनाइटेड मार्क्सिस्ट) अस्तित्व में आया। ने.क.पा. (युनाइटेड) 1991 में विष्णु बहादुर मानन्धर के नेतृत्व वाले ने.क.पा. (डेमोक्रेटिक), ने.क.पा. (बर्मा) और ने.क.पा. (तुलसीलाल अमात्य) नामक तीन पुरानी संशोधनवादी पार्टियों के विलय से गठित हुई थी। ने.क.पा. (युनाइटेड मार्क्सिस्ट) नेपाल की तीसरी प्रमुख संशोधनवादी पार्टी है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य छोटी-छोटी संशोधनवादी पार्टियाँ भी हैं।

यदि क्रान्तिकारी वाम शिविर की मुख्य दो पार्टियों की एकता-प्रक्रिया सही दिशा में आगे बढ़ती है और यदि क्रान्तिकारी वाम वर्तमान संक्रमण काल का सही ढंग से लाभ उठाने में सफल रहता है तो निश्चय ही सत्ता का अवसरवादी खेल ज़्यादा से ज़्यादा नंगे रूप में खेलते हुए ने.क.पा. (एमाले) और ने.क.पा. (माले) का नेतृत्व न केवल जनता बल्कि अपनी क़तारों के सामने भी ज़्यादा से ज़्यादा बेनक़ाब होता चला जायेगा। इन दो संशोधनवादी पार्टियों की क़तारों में अभी भी ईमानदार आम कार्यकर्ता काफ़ी हैं, जो फिर टूटकर क्रान्तिकारियों के साथ आ खड़े होंगे। यह प्रक्रिया जनयुद्ध के बारह वर्षों के दौरान और संविधान सभा के चुनाव के दौरान एक हद तक चली भी थी। आगे भी इसकी सम्भावना है।

चुनाव-परिणामों का विश्लेषण : कुछ और महत्त्वपूर्ण पहलू

ऊपर हम इस बात की चर्चा कर आये हैं कि संविधान सभा के चुनाव के पूर्व यदि ने.क.पा. (एकता केन्द्र) और ने.क.पा. (माओवादी) के बीच एकता या कम से कम तालमेल भी हो जाता तो क्रान्तिकारी वाम सरकार बनाने लायक़ बहुमत आसानी से हासिल कर सकता था। यदि क्रान्तिकारी वाम शिविर के बीच तालमेल हो पाता तो दो-तिहाई बहुमत भी हासिल किया जा सकता था। ऐसा न हो पाने के लिए ने.क.पा. (माओवादी) की अहम्मन्यता व अतिआत्मविश्वास एक हद तक ज़िम्मेदार था। साथ ही, मोहन बिक्रम सिंह के नेतृत्व वाली ने.क.पा. (मसाल) व ने.म.कि.पा., ने.क.पा. (यूनिफ़ायड) जैसी छोटी क्रान्तिकारी वाम पार्टियों की संकीर्ण गुटवादी मानसिकता की भी महत्त्वपूर्ण नकारात्मक भूमिका थी।

लेकिन बात केवल इतनी ही नहीं थी। चुनाव परिणामों का विश्लेषण व्यापक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। संविधान सभा का चुनाव पूँजीवादी संसदीय चुनाव-प्रणाली के फ़्रेमवर्क के अन्तर्गत हुआ। इस फ़्रेमवर्क में निर्वाचक मण्डल का निर्धारण जिस प्रकार होता है, चुनावों में पूँजी, जोड़तोड़-तिकड़म और पूँजीवादी प्रचार तन्त्र की जो भूमिका होती है, उसका ज़्यादा से ज़्यादा लाभ बुर्जुआ संसदीय पार्टियों को मिलता है। इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। रूस में 1917 की अक्टूबर क्रान्ति के समय सोवियतों में बोल्शेविकों के नेतृत्व वाले गठबन्धन का बहुमत था, लेकिन संविधान सभा में बोल्शेविक बहुमत नहीं हासिल कर पाये। महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि दोहरी सत्ता की मौजूदगी के उस काल में भी अन्तिम निर्णय बलात सत्ता पर क़ब्ज़ा करने के द्वारा ही हुआ। स्पष्ट है कि नेपाल में संविधान सभा के चुनावों में नेपाली कांग्रेस और ने.क.पा. (एमाले) द्वारा दूसरे और तीसरे क्रम पर अधिक सीटें हासिल कर पाने का एक अहम कारण पूँजीवादी जनवादी चुनाव प्रणाली भी रही है। ऐसी स्थिति में यदि सत्ता के बँटवारे का कोई फार्मूला निकल भी आता है और ने.क.पा. (माओवादी) एक अल्पमत सरकार बना पाने में सफल हो भी जाती है, तो सच्चे अर्थों में एक नवजनवादी संविधान का बन पाना सम्भव नहीं है। आगे चलकर, एक ज़्यादा से ज़्यादा जनोन्मुख पूँजीवादी जनवादी संविधान के अन्तर्गत भी यदि चुनाव पूँजीवादी संसदीय प्रणाली के अन्तर्गत होंगे तो पूँजीवादी पार्टियों के उनसे लाभान्वित होने की स्थिति किसी न किसी हद तक बनी रहेगी। फिर इस सच्चाई की भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि नौकरशाही, सेना-पुलिस और न्यायपालिका का ढाँचा जब तक आमूल रूप से नहीं बदलेगा, तब तक संसद में क्रान्तिकारी वाम के बहुमत पा लेने और सरकार बना लेने मात्र से सर्वहारा राज्यसत्ता या नवजनवादी राज्यसत्ता के अस्तित्व में आ जाने की बात नहीं सोची जा सकती। आगे नये संविधान के अन्तर्गत होने वाले चुनाव में यदि क्रान्तिकारी वाम बहुमत पा भी लेता है तो प्रतिक्रान्ति की सम्भावनाएँ बनी रहेंगी। ऐसी स्थिति में सबकुछ इस बात पर निर्भर करता है कि जनता की समान्तर क्रान्तिकारी वैकल्पिक सत्ता नेपाल में किस रूप में विकसित होगी और दोहरी सत्ता की स्थिति किस रूप में पैदा होगी। एक महत्त्वपूर्ण सकारात्मक बात यह है कि ने.क.पा. (माओवादी) अपनी सशस्त्र शक्ति को बनाये रखने और युवा कम्युनिस्ट लीग को बनाये रखने के सवाल पर दृढ़ है। वर्गों के बीच जारी संघर्ष में अन्तिम निर्णय तो बल-प्रयोग के द्वारा ही होना है!

(पृष्ठ 12 पर जारी)

इराक : अमेरिकी फ़ौजों का सबसे बड़ा जेलखाना

अपने ही देश में क़ैद इराकी जनता

अमेरिका इराक में "आज़ादी" और "लोकतन्त्र" क़ायम करने के लिए गया था। इसी इरादे से उसने इराक पर हज़ारों टन बम बरसाकर पूरे देश को तहस-नहस कर दिया और लाखों बच्चों सहित अनगिनत बेकसूर लोगों को मौत के घाट उतार दिया। छह साल से अमेरिकी फौजें इराकी धरती पर क़ब्ज़ा किये बैठी हैं। इस सबके बदले इराकी जनता को जो "आज़ादी" मिली है उसकी एक छोटी-सी मिसाल यह है कि आज 4 लाख इराकी नागरिक अमेरिकी सेना की जेलों में क़ैद हैं।

अबु ग़रेब की जेल में इराकी कैदियों के साथ अमेरिकी और ब्रिटिश फौजियों के वहशी कारनामों की खबरें तो बार-बार आती ही रहती हैं लेकिन यह बात बहुत कम लोगों को पता है कि इस कुख्यात जेल के अलावा कब्ज़ावर फौजों ने इराक में 36 और जेलें तथा बन्दी शिविर बना रखे हैं। इराकी कैदियों और राजनीतिक बन्दियों की फेडरेशन के प्रतिनिधि और प्रसिद्ध इराकी वकील सहर यासिरी के अनुसार इन जेलों में बन्द 4 लाख लोगों में 6500 बच्चे और दस हज़ार महिलाएँ हैं। इनके अलावा 1000 क़ैदी ऐसे हैं जिनका अब कोई अता-पता ही नहीं है। अमेरिकी फौजों के नियन्त्रण वाली इन जेलों के अलावा इराकी सरकार, गृह मन्त्रालय, सुरक्षा मन्त्रालय, राष्ट्रीय सुरक्षा और गुप्तचर मन्त्रालय की अलग जेले हैं। इन सबके अलावा कई राजनीतिक पार्टियों की निजी जेलें भी हैं।

अबु ग़रेब जेल में क़ैदियों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार की तस्वीरें लीक हो जाने के बाद दुनिया भर के लोगों को उनकी जानकारी मिल गयी थी। लेकिन श्री यासिरी बताते हैं कि ये तस्वीरें इस भयानक स्थिति का सिर्फ़ एक पहलू पेश करती हैं। वास्तविक स्थिति की भयावहता का सिर्फ़ अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है।

अमेरिका की अगुवाई में साम्राज्यवादी क़ब्ज़े ने इराक़ के लोगों का जीवन नरक बना दिया है। इराक़ी नागरिक अपने ही देश में क़ैदी बन कर रह रहे हैं। साम्राज्यवादी सेनाएँ और अमेरिका की निजी सुरक्षा कम्पनियों के भाड़े के सैनिक इराक़ी लोगों की आज़ादी और स्वाभिमान को बूटों तले रौंद रहे हैं। एक तरफ तमाम पाबन्दियों के कारण लोगों को बुनियादी ज़रूरत की चीजें हासिल नहीं हो पा रही हैं वहीं दूसरी तरफ़ सैनिक रात-बिरात कभी भी लोगों के घरों में घुसकर तलाशी लेते हैं, परिवार वालों के सामने ही लोगों को गोली मार देते हैं या पकड़कर यातनागृह में डाल देते हैं। दवा, इलाज, भोजन और आवास की समस्या से इराक़ की एक बहुत भारी आबादी जूझ रही है। अन्य देशों द्वारा भेजी जाने वाली मानवीय सहायता भी लोगों तक पहुँचने नहीं दी जाती। छोटी-छोटी बातों पर और बिना सबूत के ही लोगों को और यहाँ तक कि औरतों और बच्चों को भी जेल में डाल दिया जाता है।

श्री यासिरी बताते हैं कि अमेरिकी सेना ने क़ैदियों को यातनाएँ देने के तरह-तरह के तरीके ईजाद किये हैं। शारीरिक यातनाएँ इसका सबसे छोटा रूप हैं। अन्य तरीक़े तो ऐसे हैं जो मानवीय सम्वेदना को झकझोर कर रख दें। लम्बे समय तक लोगों को खड़ा रखना, पानी में डुबाना, नंगा करवाना, लम्बे समय तक रोशनी से दूर रखना, धार्मिक प्रतीकों का अपमान करना और ज़बरदस्ती उनसे ऐसा करवाना कुछ ऐसे ही तरीक़े हैं। बलात्कार का प्रयोग एक नीति के तौर पर किया जाता है और सभी क़ैदियों में लगभग 95 प्रतिशत के साथ एक या कई बार बलात्कार किया जा चुका है। नस्ली श्रेष्ठता के अहंकार में चूर अमेरिकी सैनिक अरब लोगों के धार्मिक और व्यक्तिगत स्वाभिमान पर चोट करने के लिए किसी भी सीमा से गुज़र जाते हैं। इन सैनिकों का प्रशिक्षण इस तरह से कराया जाता है कि इनकी मानवीय संवेदना मर जाये। उन्हें अमेरिकी और यूरोपीय देशों के लोगों के अतिरिक्त बाक़ी दुनिया के लोगों को इन्सान ही नहीं समझने की लगातार ट्रेनिंग दी जाती है। लेकिन समूची मानवीय चेतना को कभी-भी पशुवत नहीं बनाया जा सकता। ऐसे वहशी कारनामों को अंजाम देने के बाद बहुतेरे अमेरिकी सैनिक सामान्य नहीं बने रह पाते। इराक से लौटने वाले अमेरिकी सैनिकों में से बहुत बड़ी संख्या में मनोरोगों के शिकर हो जाते हैं। उनके बीच आत्महत्या की घटनाएँ भी लगातार बढ़ रही हैं। और अक्सर ही कोई न कोई अमेरिकी सैनिक अपने आकाओं के ख़िलाफ़ बग़ावत कर उठता है : "बस बहुत हुआ, तुम्हारे इस घिनौने खेल का मोहरा बनने के लिए अब मैं तैयार नहीं हूँ।"

इराक को लेकर अमेरिकी साम्राज्यवादियों के सारे झूठ सामने आ चुके हैं। लेकिन वे बेशर्मी के साथ झूठ और बहाने पेश करते रहते हैं। अबु ग़रेब में क़ैदियों के साथ बर्बर दुर्व्यवहार की तस्वीरें सामने आने के बाद अमेरिकी रक्षा मन्त्री डोनाल्ड रम्सफेल्ड को बस यही दुख था कि अगर सैनिकों के पास डिजिटल कैमरे नहीं होते तो कोई बखेड़ा ही न होता। लेकिन पूरी दुनिया ही नहीं, अमेरिकी मेहनतकश जनता में भी अब हर झूठ के साथ शासकों के प्रति नफरत बढ़ती जा रही है।

इराकी जनता के जुझारू संघर्ष ने अमेरिकी मंसूबों को ध्वस्त कर दिया है। हर बीतते सप्ताह के साथ अमेरिकी साम्राज्यवादियों का संकट बढ़ता जा रहा है। लाख कोशिश करके भी अमेरिकी न तो इराक में अपनी मनमानी कर पा रहा है और न ही वहाँ से निकल पा रहा है। बौखलाहट में इराकी जनता पर उसका ज़ुल्म जितना ही बढ़ेगा, एक दिन उसे उतनी ही बुरी तरह पिटकर वहाँ से भागना पड़ेगा।

जय पुष्प

'बिगुल' के पाठकों, शुभचिन्तकों और हमदर्दों से एक अपील

साथियो!

'बिगुल' को और अधिक धारदार बनाना हमारी साझा जिम्मेदारी है–'बिगुल' टीम की भी और पाठकों, शुभचिन्तकों और हमदर्दों की भी। हम आपसे अपील करते हैं कि :

–'बिगुल' को नियमित पत्र लिखते रहें। अपने कारखाने और औद्योगिक क्षेत्रों के हालात के बारे में लेख व टिप्पणियाँ भेजें। भाषा की अनगढ़ता या कच्चेपन की परवाह किये बिना बेहिचक लिखें। 'बिगुल' आपका दोस्त है, फिर कैसी हिचक? दिल की हर गिरह खोलकर लिखिये।

–विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों की मज़दूर बस्तियों में 'बिगुल' अध्ययन-मण्डल गठित कीजिए और अलग-अलग अंकों में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण लखों पर सामूहिक चर्चाओं के सत्र आयोजित कीजिए।

–'बिगुल' के स्थायी कोष के लिए अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग एकत्र करके भेजिए। आर्थिक संकटों से 'बिगुल' की आवाज़ कभी न बन्द होने पाये, यह हमारा साझा संकल्प है।

–जिन पाठक साथियों की सदस्यता समाप्त हो गयी है वे जितनी जल्दी सम्भव हो नवीनीकरण ज़रूर करा लें।

–सम्पादक मण्डल

नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : एक संक्षिप्त इतिहास...

(पृष्ठ 11 से आगे)

नेपाली क्रान्ति का लम्बा रास्ता : भविष्य के गर्भ में छिपी सम्भावनाएँ

240 साल पुराने राजतन्त्र की समाप्ति और पूँजीवादी बहुदलीय संसदीय लोकतन्त्र की बहाली नेपाली नवजनवादी क्रान्ति की एक महत्त्वपूर्ण विजय है, एक ऐतिहासिक मुकाम है और एक अहम मोड़बिन्दु है। यह आंशिक-अधूरी जनवादी क्रान्ति है। क्रान्ति की प्रक्रिया अभी जारी है और यह अवधि अभी लम्बी होगी। संक्रमण की यह अवधि अनेक मोड़ों-घुमावों से भरी होगी, जिनका पहले से पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता।

ज़ाहिर है कि पूँजीवादी संसदीय पार्टियाँ त्रिशंकु संविधान सभा का लाभ उठाकर सत्ता की बन्दरबाँट और जोड़तोड़ का घिनौना खेल खेलेंगी और भावी संविधान को पूँजीवादी परिधि के भीतर सीमित रखने की हरचन्द कोशिश करेंगी। बहुमत न हो पाने की स्थिति में क्रान्तिकारी वाम धारा की पार्टियाँ यदि सरकार बना भी लेती हैं तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-सम्प्रभुता की बहाली, असमान सन्धियों को रद्द करना और राज्य के ढाँचे के पुनर्गठन के काम को अंजाम दे पाना उनके लिए कठिन होगा। ऐसी स्थिति में सरकार से बाहर आकर फिर से जनयुद्ध की राह पकड़ना ही एकमात्र क्रान्तिकारी विकल्प होगा। और तब जनता पूरी ताकत के साथ इस विकल्प के साथ होगी, क्योंकि बुर्जुआ संसदीय पार्टियों और संशोधनवादियों का चरित्र उनके सामने पूरी तरह नंगा हो चुका रहेगा।

अस्थिरता का दौर लम्बा खिंचने पर बुर्जुआ वर्ग द्वारा सैन्य प्रतिक्रान्ति की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इस स्थिति में भी प्रतिक्रियावादियों को देशव्यापी जनउभार का सामना करना पड़ेगा, जनयुद्ध को नया संवेग प्राप्त हो जायेगा और नेपाली क्रान्ति नयी मंज़िल में प्रविष्ट हो जायेगी।

ऐसा भी हो सकता है कि जनता को कुछ अधिक जनवादी अधिकार देने वाला संविधान और एक पूँजीवादी गणतन्त्र अस्तित्व में आये और नये संविधान के अन्तर्गत फिर से चुनाव हों। यदि क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ एकजुट हों तो उस चुनाव में भी वे बहुमत हासिल कर सकती हैं। साथ ही, संसद से बाहर जनसंघर्ष और वैकल्पिक क्रान्तिकारी सत्ता के विकास की प्रक्रिया जारी रहे, तो क्रान्तिकारी संघर्ष को आगे बढ़ाकर क्रान्ति एक नवजनवादी गणराज्य स्थापित करने का और समाजवादी संक्रमण के दौर में प्रविष्ट होने का लक्ष्य हासिल कर सकती है।

यदि किन्हीं परिस्थितयों में बुर्जुआ और संशोधनवादी पार्टियों का कोई गँठजोड़ इस दीर्घ संक्रमण अवधि के दौरान सत्तारूढ़ होने में सफल होता है (जिसकी सम्भावना कम है), तो वर्तमान विश्व परिस्थितियों में वह भी साम्राज्यवाद के सहयोग से देश में ऊपर से पूँजीवादी विकास और 'प्रशियाई मार्ग' से पूँजीवादी भूमि सुधार को ही अन्ततोगत्वा लागू करने की कोशिश करेगा। ऐसी स्थिति में वर्ग सम्बन्ध बदलने लगेंगे और नेपाल की क्रान्ति जनवादी क्रान्ति से आगे बढ़कर समाजवादी क्रान्ति की मंज़िल में प्रविष्ट हो जायेगी। क्रान्ति की मंज़िल बदल सकती है, लेकिन प्रतिकूलतम स्थितियों में भी नेपाली क्रान्ति की विकास-प्रक्रिया अब पीछे नहीं लौट सकती है। वह कुछ समय को रुक सकती है, लेकिन अन्ततः उसे आगे ही जाना है।

नेपाल में वर्ग संघर्ष जारी है। उसका एक मंच संविधान सभा है और दूसरा मंच संसद-सरकार के बाहर है। अन्तिम निर्णय दूसरे मंच पर ही होना है।

ऐसी स्थिति में, जैसा कि हमने ऊपर भी उल्लेख किया है, काफ़ी कुछ दारोमदार इस बात पर है कि सर्वहारा वर्ग की हरावल शक्तियों की एकता की प्रक्रिया कितनी तेज़ गति से आगे बढ़ती है। दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्णायक उपादान यह है कि ने.क.पा. (माओवादी) के सर्वहारा जनवाद विषयक "मुक्त चिन्तन" और बहुदलीय जनतन्त्र विषयक धारणा में दक्षिणपन्थी भटकाव के जो ख़तरे मौजूद हैं, उनसे वह कितनी जल्दी छुटकारा पा लेती है और छुटकारा पाती भी है या नहीं।

नेपाल में जारी क्रान्ति बीसवीं सदी का छूटा हुआ कार्यभार है, जो इक्कीसवीं सदी में पूरा हो रहा है। भारत जैसे तीसरी दुनिया के अग्रणी देशों में नेपाल से परिस्थितियाँ काफ़ी भिन्न हैं, लेकिन फिर भी दुनिया के एक देश में बीहड़ परिस्थितियों में जारी सर्वहारा क्रान्ति आज हर देश के सर्वहारा क्रान्तिकारियों के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणास्रोत का काम कर रही है। साथ ही, यदि भारत, बंगलादेश और "बाज़ार समाजवादी" चीन जैसे देशों में कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शक्तियों का पुनरुत्थान होगा, तो इससे नेपाली क्रान्ति को एक नया संवेग प्रदान होगा।

आज विश्व पूँजीवाद का गहराता संकट दुनिया के अलग-अलग कोनों में जिस प्रकार नये विस्फोटों की ज़मीन तैयार कर रहा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि नेपाली क्रान्ति का मार्ग बीहड़ और मोड़ों-घुमावों से भरा ज़रूर होगा, लेकिन उसका भविष्य उज्जवल है।

(10 जून, 2008)

भूल सुधार

'बिगुल' के मई 2008 के अंक में प्रकाशित 'नेपाली कम्युनिस्ट आन्दोलन : संक्षिप्त इतिहास' लेख की पहली किस्त के अन्तिम पैराग्राफ़ में "26 अप्रैल, 1996" के स्थान पर "26 अप्रैल, 2006" छप गया है। इस ग़लती के कारण हुए भ्रम के लिए हमें खेद है। कृपया इस वाक्य को शुद्ध रूप में इस प्रकार पढ़ें : "26 अप्रैल, 1996 को प्रचण्ड ने पर्वतीय क्षेत्रों और पश्चिमी नेपाल में अपना नियन्त्रण क्षेत्र स्थापित करने के उद्देश्य से सामरिक प्रयासों के लिए निर्देश जारी किया।"

ग़रीबी दूर करने का एक ही रास्ता – समाजवादी व्यवस्था

"...एक तरफ़, धन और ऐशो-आराम बराबर बढ़ते जा रहे हैं और दूसरी तरफ़, करोड़ों-करोड़ आदमी, जो अपनी मेहनत से उस सारे धन को पैदा करते हैं, निर्धन और बेघरबार बने रहते हैं। किसान भूखों मरते हैं, मज़दूर बेकार हो इधर-उधर भटकते हैं, जबकि व्यापारी करोड़ों पूद* अनाज रूस से बाहर दूसरे देशों में भेजते हैं और कारखाने तथा फैक्ट्रियाँ इसलिए बंद कर दी जाती हैं कि माल बेचा नहीं जा सकता, उसके लिए बाजार नहीं है।

इसका कारण सबसे पहले यह है कि अधिकतर ज़मीन, सभी कल-करखाने, वर्कशॉप, मशीनें, मकान, जहाज, इत्यादि थोड़े-से धनी आदमियों की मिल्कियत हैं। करोड़ों आदमी इस जमीन, इन कारखानों और वर्कशॉपों में काम करते हैं, लेकिन ये सब कुछ हजार या दसियों हजार धनी लोगों–जमींदारों, व्यापारियों और मिल-मालिकों के हाथ में हैं। ये करोड़ों लोग इन धनी आदमियों के लिए मज़ूरी पर, उजरत पर, रोटी के एक टुकड़े के वास्ते काम करते हैं। जीने भर के लिए जितना जरूरी है, उतना ही मजदूरों को मिलता है। उससे अधिक जितना पैदा किया जाता है, वह धनी मालिकों के पास जाता है। वह उनका नफा, उनकी "आमदनी" है। काम के तरीकों में सुधार से और मशीनों के इस्तेमाल से जो कुछ फायदा होता है, वह जमींदारों और पूँजीपतियों की जेबों में चला जाता है : वे बेशुमार धन जमा करते हैं और मजदूरों को चंद टुकड़ों के सिवा कुछ नहीं मिलता। काम करने के लिए मजदूरों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाता है : एक बड़े फार्म या बड़े करखाने में कितने ही हज़ार मज़दूर एक साथ काम करते हैं। जब इस तरह से मज़दूर इकट्ठा कर दिये जाते हैं और जब विभिन्न प्रकार की मशीनें इस्तेमाल की जाती हैं, तब काम अधिक उत्पादनशील होता है : बिना मशीनों के अलग-अलग काम करके बहुत-से मज़दूर जितना पहले पैदा करते थे, उससे कहीं अधिक आजकल एक अकेला मज़दूर पैदा करने लगा है। लेकिन काम के अधिक उत्पादनशील होने का फल सभी मेहनतकशों को नहीं मिलता, वह मुट्ठी भर बड़े-बड़े जमींदारों, व्यापारियों और मिल-मालिकों की जेबों में पहुँच जाता है।

अक्सर लोगों को यह कहते सुना जाता है कि जमींदार या व्यापारी लोगों को **"काम देते हैं"** या वे गरीबों को रोजगार "देते हैं।" मिसाल के लिए कहा जाता है कि पड़ोसी कारखाना या पड़ोस का बड़ा फार्म स्थानीय किसानों की **"परवरिश करता है"**। लेकिन असल में मज़दूर अपनी मेहनत से ही अपनी परवरिश करते हैं और उन सबको खिलाते हैं, जो खुद काम नहीं करते। लेकिन जमींदार के खेत में, कारखाने या रेलवे में काम करने की **इजाज़त पाने के लिए** मज़दूर को वह सब **मुफ्त में** मालिक को **दे देना** पड़ता है, जो वह पैदा करता है, और उसे केवल नाममात्र की मजूरी मिलती है। इस तरह असल में न जमींदार और न व्यापारी मजदूरों को काम देते हैं, बल्कि मजदूर अपने श्रम के फल का अधिकतर हिस्सा मुफ्त में देकर सबके भरण-पोषण का भार उठाते हैं।

व्ला. इ. लेनिन

आगे चलिए। सभी आधुनिक देशों में जनता की ग़रीबी इसलिए पैदा होती है कि मज़दूरों के श्रम से जो तरह-तरह की चीज़ें पैदा की जाती है, वे सब बेचने के लिए, मंडी के लिए होती हैं। कारखानेदार और दस्तकार, ज़मींदार ओर धनी किसान जो कुछ भी पैदा करवाते हैं, जो पशु पालन करवाते हैं, या जिस अनाज की बोवाई-कटाई करवाते हैं, वह सब **मंडी में बेचने के लिए**, बेचकर **रुपया** प्राप्त करने के लिए होता है। अब रुपया ही हर जगह राज करनेवाली ताक़त बन गया है। मनुष्य की मेहनत से जो भी माल पैदा होता है, सभी को रुपये से बदला जाता है। रुपये से आप जो भी चाहें, खरीद सकते हैं। रुपया आदमी को भी खरीद सकता है, अर्थात जिस आदमी के पास कुछ नहीं है, रुपया उसे रुपयेवाले आदमी के यहाँ काम करने के लिए मजबूर कर सकता है। पुराने समय में, भूदास प्रथा के जमाने में, भूमि की प्रधानता थी। जिसके पास भूमि थी, वह ताक़त और राज-काज, दोनों का मालिक था। अब रुपये की, पूँजी की प्रधानता हो गयी है। रुपये से जितनी चाहे ज़मीन खरीदी जा सकता है। रुपये न हों, तो ज़मीन भी किसी काम की नहीं रहेगी, क्योंकि हल अथवा अन्य औज़ार, घोड़े-बैल खरीदने के लिए रुपयों की जरूरत पड़ती है; कपड़े-लत्ते और शहर के बने दूसरे आवश्यक सामान खरीदने के लिए, यहाँ तक कि टैक्स देने के लिए भी रुपयों की ज़रूरत होती है। रुपया लेने के लिए लगभग सभी ज़मीदारों ने बैंक के पास ज़मीन रेहन रखी। रुपया पाने के लिए सरकार धनी आदमियों से और सारी दुनिया के बैंक-मालिकों से क़र्ज़ा लेती है और हर वर्ष इन क़र्ज़ों पर करोड़ों रुपये सूद देती है।

रुपये के वास्ते आज सभी लोगों के बीच भयानक आपसी संघर्ष चल रहा है। हर आदमी कोशिश करता है कि सस्ता खरीदे और महंगा बेचे। हर आदमी होड़ में दूसरे से आगे निकल जाना चाहता है। अपने सौदे को दूसरे से छिपाकर रखना चाहता है। रुपये के लिए सर्वत्र होने वाली इस मारामारी में छोटे लोग, छोटे दस्तकार या किसान ही सबसे ज़्यादा घाटे में रहते है : होड़ में वे बड़े व्यापारियों या धनी किसानों से सदा पीछे रह जाते हैं। वह आज की कमाई को आज ही खाकर जीता है। पहला ही संकट, पहली ही दुर्घटना उसे अपनी आखिरी चीज़ तक को गिरवी रखने के लिए या अपने पशु को मिट्टी के मोल बेच देने के लिए

(पेज 14 पर जारी)

*एक पूद सोलह किलोग्राम के बराबर है।–सं0

सफाईकर्मी : नरक के तलघर के अन्धेरों के बाशिन्दे

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर। सफाई मजदूर पूरे देश के महानगरों, शहरों और कस्बों की गन्दगी की सफाई कर समाज को स्वच्छ और जीने लायक बनाने का काम करते हैं। लेकिन आज यही सफाई मजदूर नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं।

गोरखपुर नगर निगम में 522 स्थाई सफाई कर्मचारी हैं जिन्हें महीने के वेतन के रूप में 6000 से 7500 तक मिलते हैं जिससे इनके परिवार का किसी प्रकार से गुजारा तो हो जाता है लेकिन बच्चों की शिक्षा और दवा-इलाज के बारे में सोचना सपना ही है। ये पूरे शहर की गन्दगी की सफाई कर उसको चमकाने का काम करते हैं लेकिन खुद इनको वहाँ झुग्गी-झोपड़ी डालकर गुजारा करना पड़ता है जहाँ शहर का कचरा फेंका जाता है। इनके मोहल्ले शहर की मूल आबादी से दूर बाहरी हिस्सों में बसाये जाते हैं जहां न शुद्ध शौचालय की व्यवस्था है न स्वच्छ पीने के पानी की और न ही इनके बच्चों के लिए किसी स्कूल की। अगर इनके बच्चे दूसरे स्कूलों में पढ़ने जाते हैं तो अन्य बच्चे नीच-डोम कहकर अपमानित करते हैं। इससे जो बच्चे पढ़ना भी चाहते है आये दिन पढ़ाई छोड़ते रहते हैं और जाहिल तथा गंवार कहे जाने को मजबूर हैं।

प्राइवेट ठेके पर काम करने वाले मज़दूरों तथा संविदा और कैजुअल पर काम करने वाले मज़दूरों की जीवन दशा तो रोम के गुलामों की जीवन दशा की बरबस याद दिला जाती है। संविदा तथा कैजुअल पर काम करने वाले मजदूरों की जीवन स्थिति प्राइवेट ठेके के तहत काम करने वाले मजदूरों की जीवन स्थिति जैसी ही है।

यहाँ प्राइवेट ठेके पर काम करने वाले करीब 500 मज़दूर हैं जिनकी मजदूरी 113 रुपये होने के बावजूद नगर निगम प्रशासन और ठेकेदारों के आपसी गँठजोड़ के कारण मात्र 50 रुपये दिहाड़ी पर ही काम करना पड़ता है। एक वार्ड में निर्धारित 20 मजदूरों की जगह 8-10 मजदूरों से ही काम कराया जाता है। कहीं-कहीं तो मात्र 4-5 मजदूरों से ही। और ऊपर से सुपरवाइजर 200-200 रु. हर महीने इनकी मज़दूरी में से काट लेते हैं। इसका कारण पूछने पर धमकी देते हैं कि नहीं दोगे तो नागा चढ़ा देंगे। इनको जाब कार्ड भी नहीं दिया जाता है जिससे ठेकेदार आये दिन इनकी मज़दूरी हड़प करता रहता है और मज़दूरी के लिए दौड़ाता रहता है। इन्हें किसी प्रकार की छुट्टी भी नहीं दी जाती है। बीमार होने पर या किसी कारणवश अगर एक दिन भी मज़दूर काम पर नहीं जाता है तो उसकी मज़दूरी काट ली जाती है। अगर किसी दिन 10 मिनट भी देरी से काम पर पहुँचता है या काम करने के दौरान बारिश या धूप से बचने के लिए 10 मिनट भी आराम करने लगे और सुपरवाइजर की नज़र पड़ गई तो डाँट-गाली के साथ पूरे दिन की मजदूरी से हाथ धोना पड़ता है।

इनके साथ पशुओं जैसा बर्ताव किया जाता है। काम करने के दौरान इन्हें वर्दी, दस्ताना, लांगबूट या बरसात के कपड़े जैसी कोई सुविधा नहीं दी जाती है। चिकित्सा जैसी कोई सुविधा भी नहीं दीजाती है। जब ये 8-10 फीट गहरे नाले में काम करने के लिए उतरते है तो इनके हाथ-पैर शीशे या तमाम प्रकार की ऐसी चीजों से कट जाते हैं जिसका इलाज इन्हें खुद कराना पड़ता है। आर्थिक तंगी के कारण ये इलाज नहीं करा पाते और उसी हालत में काम करते रहते हैं। कई सफाई मजदूर इस संवाददाता से मिले जिनमें किसी के पैर कटे थे तो किसी के हाथ कट गये थे। वे काम करने की स्थिति में नहीं थे लेकिन काम करके ही लौट रहे थे। हमने कहा कुछ दिन आराम कर लो और दवा करा लो तो सभी कहने लगे, "अभी तो दो महीने से मजदूरी ही नहीं मिली है दवा कैसे करायें? अगर काम नहीं करेंगे तो मजदूरी भी नहीं मिलेगी। राशन वाले का उधार भी बढ़ता जा रहा है। दुकानदार रोज-रोज कहता है पैसा कब दोगे। हम अब और उधार नहीं खिला सकते। आप ही बताइये अगर काम नहीं करेंगे तो बच्चों को क्या खिलायेंगे? अभी तो मजदूरी मिलने की उम्मीद से राशन वाला राशन भी दे रहा है। अगर आराम करेंगे तो राशन भी नहीं मिलेगा।"

ठेकेदारों द्वारा तरह-तरह से मजदूरी काटने के कारण 1000-1200 रु. में ही इन्हें अपने परिवार का गुजारा करना पड़ता है। आये दिन तंग आकर मजदूर काम छोड़ते रहते हैं। अगर दूसरे काम की तलाश में जाते हैं तो सड़कों पर पैर घिसते रहने के बाद भीनहीं मिलता। इसी डर से मजदूर ठेकेदारों के मकड़जाल में फंसे रहते हैं। भूख से सीधे मरने के बजाय अपने खून का एक-एक कतरा चुसवाते हुए धीमी मौत मरने का रास्ता अख्तियार करते हैं।

इनके मोहल्लों की बसाहट देखकर ऐसा लगा जैसे शहर की आबादी से छाँटकर एक छोटे से एरिया में इन्हें ठूँस दिया गया है जैसे ये इंसान नहीं जानवर हों। कुछ लोग झुग्गी-झोपड़ी डालकर तो कुछ एक-एक कमरे के पक्के-अधपक्के मकान बनाकर रहते हैं। एक छोटे से मुर्गी के दड़बेनुमा कमरे में 8-10 लोगों का परिवार रहता है।

शहर के लालडिग्गी मोहल्ले में मैं एक 9 साल की बच्ची दीपा से, जिसकी गोद में एक दुबला-पतला बच्चा था। मेरे यह पूछने पर कि इसकी तबियत खराब है क्या तो दीपा ने एक समण्दार बुजुर्ग की तरह कहा – 'नहीं, इसका बाप बहुत गरीब है न। इसकी माँ भी ऐसी ही है उसकी देह में भी मांस नहीं है। उसको दूध नहीं होता है। उसके तीन छोटे-छोटे बच्चे मर गये हैं। देखना ये भी मर जायेगी। आज इसके घर खाना नहीं बना है।' मैं चुप रह गया और उस समय कुछ नहीं कह सका।

अगले दिन उसी दीपा नाम की बच्ची से मैं मिलने गया जो इतनी कम उम्र में बड़ों जैसी बातें कर रही थी। गरीबी और दुख ने उसे असमय बड़ा बना दिया था। उससे बात करने लगा। देखते-देखते कई और छोटे-छोटे बच्चे हमारे पास इकट्ठा हो गये जिनमें से एक-दो बच्चों को छोड़कर सभी बच्चों की एक जैसी दारुण दशा थी। किसी के तन पर कपड़ा था किसी के तन पर फटे-चिथड़े।

उस मोहल्ले के लगभग सभी परिवारों की स्थिति ऐसी ही है। आर्थिक तंगी के कारण किसी प्रकार उनको रोटी मिल जाये यही बहुत है। तमाम मज़दूर अनेक प्रकार की बड़ी-बड़ी बीमारियों से ग्रसित हैं लेकिन तंगी के कारण इलाज न कराकर दर्द की गोली खाकर काम चला लेते है और बीमारियों व कुपोषण से मरते रहते हैं। एक-दो परिवारों को छोड़कर सभी अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए सूदखोरों के जाल में फंसे हुए हैं जो इनके बचे हुए खून को भी चूस डालते हैं। मारना-पीटना, गाली देना तो जैसे उनका जन्मसिद्ध अधिकार है।

आज जब आर्थिक विकास की बड़े-बड़े आँकड़े चमकाये जा रहे हैं, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र होने का डंका बजाया जाता है, सारी की सारी चुनावी सियासत करने वाली पार्टियाँ इनकी मुक्ति की बातें करती हुईं सत्ता के गलियारे में जाकर धमाचौकड़ी मचाने का काम कर रही हैं। वे संसद- विधानसभाओं में झूठी बहसबाजी करती हुई अपने आकाओं (पूँजीपतियों) को मुनाफा लूटने के लिए नीतियाँ बनाने का काम कर रही हैं। अपने आप को दलितों-शोषितों की मसीहा कहने वाली मायावती सरकार खुद माया के फेर में पड़ी रहती हैं और इनको सिर्फ वोट-बैंक के रूप में इस्तेमाल करती रहती हैं।

–उदयभान

संसदीय वामपंथियों के शासन की असलियत :

प. बंगाल में एक करोड़ से भी ज़्यादा ग्रामीण ग़रीब भुखमरी के शिकार

कार्यालय संवाददाता

पश्चिम बंगाल में पिछले तीन दशकों से तथाकथित वामपंथियों की सरकार है। ये संसदीय वामपंथी देश के ग़रीबों के सबसे बड़े हितसाधक बनते हैं और ग्रामीण ग़रीबों के रोज़गार की गारण्टी और मज़दूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा को लेकर काफ़ी शोर मचाते हैं। हाल ही में, ग्रामीण रोज़गार और मज़दूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा को लेकर योजनाएँ लागू होने पर इन्होंने काफी हल्ला मचाया कि यह उनके दबाव के कारण हुआ है और यह उनकी एक विजय है।

लेकिन स्वयं पश्चिम बंगाल सरकार की तमाम विभागीय रिपोर्टों में इस प्रान्त के ग़रीबों की जो तस्वीर सामने आयी है उससे संसदीय वामपंथियों के सभी दावों की कलई खुल गयी है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक प. बंगाल में करीब 1 करोड़ लोग भुखमरी का शिकार हैं। 19.5 लाख परिवारों को नियमित तौर पर साल भर दोनों वक्त का भोजन नहीं मिल पाता। करीब 55 लाख लोगों को एक वक्त का खाना भी नियमित तौर पर साल भर नहीं मिल पाता है। ताज्जुब की बात यह है कि इस भयानक भुखमरी से सबसे ज़्यादा प्रभावित क्षेत्र वे हैं, जो माकपा के पारंपरिक गढ़ रहे हैं, जैसे, मुर्शिदाबाद, पुरुलिया, पश्चिमी मेदिनीपुर, बंकुरा, बीरभूम, मालदा आदि। राज्य सरकार के ही तमाम विभागों की चेतावनियों के बावजूद प. बंगाल सरकार ने लम्बे समय से कोई कदम नहीं उठाया और अब भुखमरी की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। बंगाल की सरकार वहाँ की तीन स्तरीय पंचायत व्यवस्था का काफी प्रचार करती है और उसे जमीनी लोकतंत्र का एक मॉडल बताती है। यह प्रचार किया जाता है कि तीनों स्तरों पर प्रत्यक्ष चुनाव के कारण एक वास्तविक लोकतंत्र बंगाल में काम कर रहा है और जनता के हित के लिए जारी योजनाएँ सुचारू रूप से लागू होती हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि सभी पंचायतों पर माकपा की तानाशाही है और गुण्डाराज कायम है। ऊपर से आबण्टित होने वाली सारी राशि को पंचायतों के प्रमुख हड़प जाते हैं और जनता के नसीब में सिर्फ़ जूठन आता है।

2006 में किये गये ग्रामीण घरेलू सर्वेक्षण के अनुसार बंगाल की 3.5 प्रतिशत आबादी को एक वक्त का खाना भी नसीब नहीं हो पाता है और 16.5 प्रतिशत आबादी को दोनों वक्त का खाना नहीं मिल पाता है। 2001 की जनगणना के अनुसार बंगाल की ग्रामीण आबादी 5.77 करोड़ थी जिसमें से 1करोड़ जनता निरन्तर भुखमरी की चपेट में रहती है। जब इस स्थिति पर काफी हल्ला मचा तो 2004 में राज्य सरकार ने दिखावे के लिए कुछ कदम उठाए। करीब चार हज़ार गाँवों की पहचान "पिछड़े गाँवों" के रूप में की गयी जिनमें सरकार को विशेष कदम उठाकर भुखमरी और गरीबी को दूर करना था। लेकिन इन गाँवों की पहचान का पैमाना ही अजीब था। इस पैमाने के अनुसार सिर्फ उन गाँवों पर विचार किया गया जहाँ महिला साक्षरता 30 प्रतिशत से कम थी और 60 प्रतिशत से अधिक आबादी असंगठित और अकुशल मज़दूर थी। इसमें आय को कोई पैमाना नहीं माना गया, जबकि गरीबी को निर्धारित करने का सबसे बुनियादी पैमाना पारिवारिक आय ही होती है। इससे स्थिति में कोई सुधार नहीं होना था और 2007 में फिर से हुए एक सर्वेक्षण में यह तथ्य सामने आया कि इन "पिछड़े गाँवों" में अधिकांश आबादी को खींचतानकर एक वक्त की रोटी मिल पाती है। और कइयों को नियमित तौर पर वह भी नहीं मिल पाती। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 61वें चक्र ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए बताया कि प. बंगाल की 9 प्रतिशत जनता को दोनों वक्त का खाना नहीं मिल पाता है। प. बंगाल सरकार अल्पसंख्यकों की भी बड़ी हिमायती बनती है। इस हिमायत की पोल तो नन्दीग्राम में माकपा काडरों के ताण्डव के वक्त ही खुल गयी थी, जहाँ की एक बड़ी आबादी मुसलमान है और माकपा काडरों के हमले में मुसलमान समुदाय के लोगों को विशष रूप से निशाना बनाया गया था। लेकिन तथाकथित पिछड़े गाँवों के हालात पर भी नज़र डालने से अल्पसंख्यक समर्थन के इस दावे की पोल खुल जाती है। आँकड़े बताते हैं कि इन पिछड़े गाँवों में दलितों की आबादी कुल आबादी का 28 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियों के लोगों की आबादी 30 प्रतिशत और मुसलमानों की आबादी 27 प्रतिशत है। आर्थिक तौर पर देखें तो इन गाँवों खेतिहर मज़दूर 64 प्रतिशत है और बचे 36 प्रतिशत का बड़ा हिस्सा भी छोटा या बरबादी की कगार पर खड़ा किसान है। 77 प्रतिशत से ज़्यादा आबादी की औसत मासिक आय 1500 रुपये से भी कम है और एक भारी आबादी गरीबी रेखा के नीचे रह रही है।

अब एक निगाह डालें उन योजनाओं के अमल पर ग़रीबों के उद्धार के लिए केन्द्र सरकार या राज्य सरकार लागू करती है। इन योजनाओं की स्थिति पर निगाह डालते ही स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाने वाले विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने और निवश की आकर्षक स्थितियाँ बनाने की बात है, वहाँ तो बुद्धदेव की सरकार काफी चौकस और तत्पर है, लेकिन जहाँ गरीबी और भुखमरी दूर करने के लिए कदम उठाने की बात है, वहाँ दावों से आगे कुछ भी कर पाने का दम गरीबों का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले इन संसदीय वामपंथियों में नहीं है। हम पाते हैं कि राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना के लिए आबण्टित करोड़ों रुपये की राशि में से करीब आधी राशि ख़र्च ही नहीं की जाती है। जो खर्च की जाती है उसमें इतनी अनियमितताएँ हैं कि उसका लाभ वाकई ज़रूरतमन्द लोगों तक नहीं पहुँचता। बड़ी संख्या में गाँवों के प्रभावी लोग जो सामान्यत: माकपा से सम्बन्ध रखते हैं, इन योजनाओं में आने वाली राशि को निगल जाते हैं। इसके अतिरिक्त, खाद्यान्न सुरक्षा को सुनिश्चित करने वाली योजनाओं को भी प्रभावी रूप से लागू नहीं किया जाता। मिसाल के तौर पर, अन्त्योदय और अन्नपूर्णा योजना के अन्तर्गत आने वाले कुल कार्डहोल्डर लोग मात्र पौने दो करोड़ हैं। सरकारी व गैर-सरकारी रिपोर्टों के अनुसार बिरले ही ऐसा होता है इन योजनाओं का लाभ उन लोगों तक पहुँचता है जो इसके अधिकारी हैं। ये योजनाएँ विशेष रूप से ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के लिए बनाई गई हैं। लेकिन कुछ ही मामलों में ग़रीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के कार्ड बने हैं। आम तौर पर, इन योजनाओं के तहत अनाज उनको मिलता है जिन्हें इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। इनमें से अधिकांश माकपा का समर्थन आधार बनाने वाले लोग हैं। इन्दिरा आवास योजना के तहत भी हालत कुछ ऐसी है। इस योजना के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों को आवास मुहैया कराने का प्रावधान है। लेकिन इसका लाभ माकपा समर्थित भू-माफिया उठाते हैं और ज़मीनों को बड़े पैमाने पर हड़प जाते हैं। राज्य सरकार द्वारा लागू रोज़गार सुरक्षा योजना का हश्र भी यही हुआ है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली का जितना बुरा हाल प. बंगाल में है उतना शायद ही किसी राज्य में हो। यह पूरी की पूरी प्रणाली यहाँ भ्रष्टाचार और अराजकता के दलदल में डूबी हुई है और यह ग़रीबों को कोई लाभ नहीं पहुँचा पाती। कई गाँवों में तो लोगों ने गुस्से के कारण इन राशन की दुकानों पर धावा बोल दिया। ज्ञात हो कि इन दुकानों का ठेका अधिकांशत: माकपा काडर को ही मिलता है। ऐसे मौकों पर हथियारबन्द माकपा काडरों ने गोलियों से इन गरीबों का स्वागत किया।

इस पूरी स्थिति का बुनियादी कारण यह है कि राज्य सरकार की मंशा और चाहत यह है ही नहीं कि ग़रीबी और भुखमरी दूर हो। राज्य सरकार के मशीनरी के सभी अंगों में माकपा समर्थक लोग बैठे हैं जो राज्य पूँजीपति या नौकरशाह पूँजीपति जैसी भूमिका निभाते हैं। ग़रीबों की लड़ाई लड़ने का दावा करने वाले नामधारी कम्युनिस्टों की कलई एक ऐसे राज्य में ग़रीबों की हालत का जायज़ा लेते ही खुल जाती है जहाँ लगभग तीन दशक से उनकी सरकार है। स्पष्ट है कि जहाँ तक आर्थिक नीतियों का प्रश्न है संसदीय वामपंथी कांग्रेस या भाजपा से बिल्कुल अलग नहीं हैं। बल्कि कई बार वे उदारवादी नई आर्थिक नीतियों को ज़्यादा मुस्तैदी से लागू करते नज़र आते हैं। बुद्धदेव भट्टाचार्य तो खुले तौर पर यह मान रहे हैं कि भूमण्डलीकरण के युग में पूँजीवाद के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है और कम्युनिस्टों को अपनी विचारधारा में संशोधन करके इसी व्यवस्था में शामिल हो जाना चाहिए। अब यह कौन पूछे कि फिर आप अपने नाम में से 'मार्क्सवादी कम्युनिस्ट' हटा क्यों नहीं देते? मेहनतकश जनता का भी बड़ा हिस्सा यह समझ चुका है कि इन नामधारी कम्युनिस्टों की असलियत क्या है। आज का एक बड़ा कार्यभार यह है कि मज़दूर वर्ग के इन ग़द्दारों को सबसे पहले बेनक़ाब किया जाय। नन्दीग्राम और सिंगूर में इनका असली ग़रीब-विरोधी चेहरा नज़र आ चुका है। ये आँकड़े और साफ तौर पर इनकी असलियत बयान करते हैं।

गाँव के ग़रीबों का रास्ता...

(पृष्ठ 13 से आगे)

लाचार कर देती हे। किसी कुलक* या साहूकार के हाथ में एक बार पड़ जाने पर वह शायद ही अपने को उनके चंगुल से निकाल पाये। बहुधा उसका सत्यानाश हो जाता है। हर साल हज़ारों-लाखों छोटे किसान और दस्तकार अपने झोपड़ों को छोड़कर, अपनी ज़मीन को मुफ्त में ग्राम-समुदाय के हाथ में सौंपकर उजरती मज़दूर, खेत-बनिहार, बेहुनर मज़दूर, सर्वहारा बन जाते हैं। लेकिन धन के लिए इस संघर्ष में धनी का धन बढ़ता जाता है। धनी लोग करोड़ों रूबल बैंक में जमा करते जाते हैं। अपने धन के अलावा बैंक में दूसरे लोगों द्वारा जमा किये गये धन से भी वे मुनाफा कमाते हैं। छोटा आदमी दसियों या सैकड़ों रूबल पर, जिन्हें वह बैंक या बचत-बैंक में जमा करता है, प्रति रूबल तीन या चार कोपेक सालाना सूद कमायेगा। धनी आदमी इन दसियों रूबल से करोड़ों बनायेगा और करोड़ों से अपना लेन-देन बढ़ायेगा तथा एक-एक रूबल पर दस-बीस कोपेक कमायेगा।

इसीलिए सामाजिक-जनवादी (क्रान्तिकारी)मज़दूर कहते हैं कि जनता की ग़रीबी को दूर करने का एक ही रास्ता है–मौजूदा व्यवस्था को नीचे से ऊपर तक सारे देश में बदलकर उसके स्थान पर **समाजवादी व्यवस्था** कायम करना। दूसरे शब्दों में, बड़े जमींदारों से उनकी जागीरें, कारखानेदारों से उनकी मिलें और कारखाने और बैंकपतियों से उनकी पूँजी छीन ली जाये, उनके **निजी स्वामित्व** को ख़तम कर दिया जाये और उसे देश भर की समस्त श्रमजीवी जनता के हाथों में दे दिया जाये। ऐसा हो जाने पर धनी लोग, जो दूसरों के श्रम पर जीते हैं, मज़दूरों के श्रम का उपयोग नही कर पायेंगे, बल्कि उसका उपयोग स्वयं मज़दूर तथा उनके चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे। ऐसा होने पर साझे श्रम की उपज तथा मशीनों और सभी सुधारों से प्राप्त होनेवाले लाभ तमाम श्रमजीवियों, सभी मज़दूरो को प्राप्त होंगे। धन और भी जल्दी से बढ़ना शुरू होगा, क्योंकि जब मज़दूर पूँजीपति के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए काम करेंगे, तो वे काम को और अच्छे ढंग से करेंगे। मजदूरों का खाना-कपड़ा और रहन-सहन बेहतर होगा। उनकी गुजर-बसर का ढंग बिलकुल बदल जायेगा।

लेकिन सारे देश के मौजूदा निजाम को बदल देना आसान काम नहीं है। इसके लिए बहुत ज्यादा काम करना होगा, दीर्घ काल तक दृढ़ता से संघर्ष करना होगा। तमाम धनी, सभी संपत्तिवान, सारे **बुर्जुआ** अपनी सारी ताकत लगाकर अपनी धन-संपत्ति की रक्षा करेंगे। सरकारी अफ़सर और फौज सारे **धनी वर्ग** की रक्षा के लिए खड़ी होगी, क्योंकि सरकार खुद धनी वर्ग के हाथ में है। मजदूरों को परायी मेहनत पर जीनेवालों से लड़ने के लिए आपस में मिलकर एक होना चाहिए; उन्हें खुद एक होना चाहिए और सभी संपत्तिहीनों को एक ही **मज़दूर वर्ग,** एक ही **सर्वहारा वर्ग** के भीतर ऐक्यबद्ध करना चाहिए। मज़दूर वर्ग के लिए यह लड़ाई कोई आसान नहीं होगी, लेकिन अंत में मज़दूरों की विजय होकर रहेगी, क्योंकि बुर्जुआ वर्ग–वे लोग, जो परायी मेहनत पर जीते हैं–सारी जनता में नगण्य अल्पसंख्या है, जबकि मजदूर वर्ग गिनती में सबसे ज्यादा है। संपत्तिवानों के खिलाफ मज़दूरों के खड़े होने का अर्थ है हज़ारों के खिलाफ करोड़ों का खड़ा होना।

रूस के मज़दूर इस महान लड़ाई के लिए अभी से मजदूरों की सामाजिक-जनवादी पार्टी (क्रान्तिकारी पार्टी) के भीतर ऐक्यबद्ध होने लगे हैं। छिपे-छिपे, पुलिस से बचकर ऐक्यबद्ध होना मुश्किल काम है, तो भी संगठन आगे बढ़ रहा है और मजबूत होता जा रहा है। जब रूसी जनता राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल कर लेगी, तो मजदूर वर्ग को ऐक्यबद्ध करने का काम, समाजवाद का हेतु, बहुत जल्दी से, जर्मन मजदूरों से भी अधिक तेजी से, आगे बढ़ जायेगा।

*कुलक – "धनी किसान, जो उजरती मज़दूर रख कर या सूद पर रुपया उधार देकर अथवा इसी प्रकार के अन्य उपायों द्वारा लोगों के श्रम का शोषण करते हैं" (लेनिन)।

मज़दूर अपने बीच के जयचन्दों और मीरजाफ़रों को पहचानने लगे हैं!

बिगुल संवाददाता

नोएडा। संसदीय वामपंथियों और संसदीय सुअरबाड़े की दूसरी राजनीतिक पार्टियों की ट्रेडयूनियनों ने मजदूर हितों की रक्षा की आड़ लेकर पूंजीपतियों और फैक्ट्री मालिकों की कितनी बड़ी सेवा की है इसे देखना हो, तो किसी भी औद्योगिक नगरी के मजदूरों से बात करके आसानी से देखा जा सकता है।

नोएडा में काम कर रहे बिगुल मजदूर दस्ता के कार्यकर्ता अपने रोजमर्रे के अनुभव के आधार पर बताते हैं कि दलाल ट्रेडयूनियन संगठनों की राजनीति ने किस तरह मजदूरों की लड़ाकू चेतना को भोथरा कर दिया है। मजदूर वर्ग के इन जयचंदों और मीरजाफरों ने आम मजदूरों को अपना काम निकाल लेने और यहां तक कि तिकड़म और दलाली देकर भी अपना तात्कालिक हित साधा लेने की लम्बे अर्से से ट्रेनिंग दी है। यानी उन्होंने वे तमाम कुकर्म जो वे स्वयं करते हैं मजदूरों को भी सिखाने में अपनी तमाम शक्ति लगा दी है।इस तरह मजदूर वर्ग के इन विभिषणों ने मजदूर एकजुटता को भीतर से खोखला बना देने की मुहिम एक लम्बे समय से चला रखी है। लम्बे संघर्षों और अकूत कुर्बानियों की बदौलत जो मजदूर अधिकार हासिल किये गये थे उन्हें आज बिना लड़े गवांया जा चुका है। औद्योगिक क्षेत्रें में सब जगह पीस रेट और ठेका प्रथा अपना पैर जमा चुकी है। मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा का तो कहीं सवाल ही नहीं उठता।पूंजीपति मजदूरों के बिखराव को देख कर और चुनावबाज पार्टियों, दलाल ट्रेडयूनियनों का समर्थन पाकर पहले से ज्यादा आक्रामक हो चुके हैं। वित्तमंत्री पी. चिदंबरम का हालिया बयान कि "काम के घण्टे 10 कर दिये जाने चाहिए" इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। लेकिन इस सच्चाई का दूसरा पहलू भी है। मजदूर ट्रेडयूनियन की दलाली को साफ-साफ समझने लगे हैं। आम मजदूर उनपर भरोसा नहीं करते। युवा मजदूरों की नई खेप में ऐसे बहुत से मजदूर हैं जिनके भीतर गुस्सा और आक्रोश और लड़ाकूपन है। उन्हें एक सही रास्ते की तलाश है। ट्रेडयूनियनवाद ने जहां एक तरफ पुरानी पीढ़ी के मजदूरों को समझौतापरस्त और सुविधाभोगी बनाया है ठीक उसी समय उसने युवा मजदूरों को जुझारू और लड़ाकू बनने को विवश भी किया है। भविष्य का मजदूर आंदोलन इन्हीं युवा मजदूरों से शक्ति लेकर उभरेगा।

कभी सोचा वेतन का फासला!

औद्योगिक मज़दूरों की प्रति माह औसत मजदूरी दर 2005

देश	मासिक मजदूरी (रुपये में)	अमेरिका की मजदूरी दर का प्रतिशत
अमेरिका	127521	100
जापान	116609	91.4
दक्षिण कोरिया	102582	80.4
हंगरी	32239	25.3
चेक गणतंत्र	26928	21.1
पोलैंड (2004 का)	25780	20.0
चिली	19026	14.9
मेक्सिको (2004 का)	15044	11.8
ब्राजील (2002 का)	13583	10.7
पेंठ	10463	8.2
चीन (2004 का)	6217	4.9
थाईलैण्ड (2004 का)	5874	4.6
फिलिप्पीन्स (2004 का)	4347	3.4
भारत (2003 का)	1021	0.8

स्रोत : अन्तरराष्ट्रीय लेबर ऑफिस (जेनेवा) के आँकड़े, मंथली रिव्यू, अप्रैल 2008

न्यूनतम वेतन तय करने में सरकारी दोगलापन

अपने ही बनाए मानकों का मखौल उड़ा रही है सरकार

यह टिप्पणी लिखे जाने के समय तक मुद्रास्फूर्ति की दर 8.1 प्रतिशत हो चुकी थी। सभी समझदार अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि अभी 6-8 महीने तक महँगाई की दर में कमी आने की उम्मीद करना बेकार है। विश्व बाज़ार में तेल की बढ़ती कीमत, पूँजीवादी खेती के कारण पैदा हो रहा खाद्य संकट, अनाज के व्यापार में सट्टेबाज़ी और वायदा कारोबार, तथा जमाखोरी के कारण महँगाई ने सारे रिकॉर्ड तोड़ दिये हैं। हाल में आए वेतन आयोग ने एक बार फिर मज़दूरों के साथ छल करते हुए उन्हें कोई राहत नहीं दी है। जो थोड़ी-बहुत पंजीरी बँटी है वह संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों को बँटी है। बताने की ज़रूरत नहीं है कि आज भारत की करीब 60 करोड़ सर्वहारा आबादी में से 90 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाला अस्थायी, ठेका या दिहाड़ी मज़दूर है। उसके लिए व्यवस्था ने क्या किया है? आइये, ज़रा इस पर निगाह डालें।

सरकारी कानून के हिसाब से अकुशल मज़दूर के लिए न्यूनतम मज़दूरी करीब रु. 3400 है, अर्द्धकुशल के लिए यह राशि करीब 3700 है और कुशल मज़दूर के लिए यह करीब 4000 है। यानी, एक कुशल मज़दूर को भी दिहाड़ी के तौर पर रु. 153 मिलने चाहिए। हम सभी जानते हैं कि यह कानून कहीं लागू नहीं होता। आम तौर पर एक कुशल मज़दूर को अधिक से अधिक 100-125 रुपये दिहाड़ी मिलती है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारण्टी योजना के तहत 100 दिन के रोज़गार के लिए मज़दूरों को न्यूनतम 73 रुपये दिहाड़ी देने का प्रावधान है और अगर उसे रोज़गार नहीं मिल पाता है तो बेरोज़गारी भत्ते के तौर पर उसे 35 रुपये प्रतिदिन देने की चर्चा हो रही है। खैर, यह तो पूरी योजना ही ग़रीबों के साथ एक घिनौना मज़ाक है। आज के महँगाई के ज़माने में 73 रुपये या 35 रुपये दिहाड़ी देना तो मज़दूरों को कुपोषण और भुखमरी के गड्ढे में धकेलने जैसा ही है।

पहले तो इस न्यूनतम मज़दूरी के कानून को लागू करवाना ही क्रान्तिकारी मज़दूर संगठनों का एक ज़रूरी काम बनता है और साथ ही इसके लिए जुझारू आन्दोलन संगठित किये जाने की ज़रूरत है। लेकिन यहाँ ग़ौर करने वाली बात यह है कि 1957 में मज़दूरों के जुझारू संघर्ष के बाद सरकार ने न्यूनतम मज़दूरी तय करने के जो मानक तय किये थे आज उन मानकों का पालन स्वयं सरकार नहीं कर रही है। 11-12 जुलाई, 1957 में तत्कालीन श्रम मंत्री गुलज़ारी लाल नन्दा की अधयक्षता में हुए एक सम्मेलन के बाद मज़दूरों के पक्ष और सरकार के पक्ष ने संयुक्त रूप से घोषणा की कि इस सम्मेलन में न्यूनतम मज़दूरी तय करने के लिए तय किये गये सिद्धान्तों को सभी को मानना होगा। इस सम्मेलन में दोनों पक्ष इस बात पर राज़ी हुए थे कि न्यूनतम मज़दूरी तय करने के लिए डाक्टर एक्रेइड द्वारा तय किये गये सिद्धान्तों को माना जाएगा। इसके अनुसार मज़दूर स्वस्थ रूप में काम करता रह सके इसके लिए उसे प्रतिदिन 2700 कैलोरी ऊर्जा मिलनी चाहिए। प्रत्येक परिवार को तीन व्यक्तियों की इकाई माना गया। इस आधार पर मज़दूरी तय करने का सिद्धान्त निर्धारित हुआ। अगर आज के समय डॉ. एक्रेइड के सिद्धान्त के अनुसार मज़दूरी तय की जाय तो वह ऊपर दी गयी तालिका के अनुसार होगा।

खाद्य सामग्री	प्रतिदिन मात्रा	न्यूनतम बाज़ार मूल्य	कुछ अच्छी गुणवत्ता वाला बाज़ार भाव
चावल/आटा	400 ग्राम	8.50 रुपये	10 रुपये
दाल	85 ग्राम	5 रुपये	6 रुपये
चीनी-गुड़	57 ग्राम	3.50 रुपये	4 रुपये
दूध	280 ग्राम	7.50 रुपये	9 रुपये
मछली-मांस	85 ग्राम	12 रुपये	15 रुपये
तेल-घी	57 ग्राम	8 रुपये	9 रुपये
अण्डा	1	3 रुपये	3 रुपये
फल	85 ग्राम	5 रुपये	6 रुपये
सब्ज़ी	250 ग्राम	8 रुपये	12 रुपये
कुल		**60-50 रुपये**	**74 रुपये**

ग़ौर करने की बात है कि इसमें तमाम रोज़मर्रा की ज़रूरतों वाले सामान का खर्चा शामिल नहीं है। मिसाल के तौर पर, साबुन, टूथपेस्ट, मसाले, चायपत्ती आदि। इनको शामिल कर लिया जाय तो ख़राब गुणवत्ता वाली सामग्री के इस्तेमाल की सूरत में एक व्यक्ति का प्रतिदिन ख़र्च बैठता है करीब 72 रुपये और थोड़ी अच्छी गुणवत्ता वाली सामग्री के इस्तेमाल की सूरत में यह राशि बैठती है करीब 88 रुपये। यानी तीन व्यक्तियों के परिवार के लिए यह खर्च हुआ 264 रुपये प्रतिदिन। अब इसमें तमाम और ज़रूरी ख़र्चों को जोड़ दिया जाय।

मासिक खर्च

न्यूनतम तीन लोगों के परिवार के खाने का ख़र्च	**- 7920 रुपये**
ईंधन का खर्च	**- 670 रुपये**
कपड़े का खर्च	**- 300 रुपये**
मकान का किराया	**- 670 रुपये**
कुल खर्च	**- 9560 रुपये**

यह सारी राशि 8 घण्टे काम के आधार पर तय की गई है। सभी जानते हैं कि काम के घण्टे 8 का कानून ठेकेदारों और मालिकों के बीच लोकप्रिय एक चुटकुला भर है। दूसरे, इस खर्चे में अभी बच्चों की शिक्षा का खर्च, परिवार के स्वास्थ्य सम्बन्धी खर्च को नहीं जोड़ा गया है। अगर इसे भी जोड़ दिया जाय तो यह राशि कम से कम 10,000 रुपये बैठती है। यानी, सरकारी मानकों के अनुसार एक मज़दूर का न्यूनतम वेतन 10,000 रुपये होना चाहिए। लेकिन न्यूनतम मज़दूरी इससे ढाई गुना कम है। यह मज़दूरों के साथ एक घोर विश्वासघात है। 1957 में सरकार द्वारा तय मानकों को सरकार लागू न करके एक अन्धेरगर्दी कर रही है। इसका कारण यह है कि बड़े पूँजीपति घरानों, कारपोरेट घरानों, विदेशी कम्पनियों और भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूँजी की ज़रूरतों के मुताबिक सरकार उन सारे वायदों से मुकर रही है जो वायदे उसने मज़दूरों के जुझारू आन्दोलनों के दबाव में आकर किये थे। आज जब पूरे विश्व पूँजीवाद को भयंकर मन्दी का सामना करना पड़ रहा है, तो ऐसे में इसकी मार को पूँजीपति अपने ऊपर से हटाकर मज़दूरों के ऊपर डालने में कहीं कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहे हैं। सरकारें, जो उनकी ही मैनेजमेण्ट कमेटी के रूप में काम करती हैं, लगातार सारे श्रम कानूनों को धता बता कर पूँजीपतियों को मज़दूरों को लूटने की खुली छूट दे रहे हैं। उनके न्यूनतम वेतन का मामला हो, या फिर काम के घण्टों को 8 करने का सवाल हो, सभी मामलों पर मज़दूरों से सारे हक़ छीनकर उन्हें पूँजी के गुलामों में तब्दील किया जा रहा है और पूँजीपतियों का रास्ता पूरी तरह साफ किया जा रहा है। ऐसे माहौल में मालिकों-ठेकेदारों के तलवे चाटने वाली सरकार से और उम्मीद ही क्या की जा सकती है? वह क्यों मानने लगी उन मानकों को जिनके अनुसार कम से कम मज़दूर अपने परिवार को भुखमरी और कुपोषण से बचा सके? वह क्यों देने लगी तय न्यूनतम मज़दूरी मज़दूरों को? एक तो न्यूनतम मज़दूरी को तय करने में सरकार भयंकर धोखाधाड़ी और अंधेरगर्दी कर रही है और उसे ढाई गुना कम कर रहा है; वहीं दूसरी ओर, उसने जो न्यूनतम मज़दूरी तय की है उसे भी दिये जाने को सुनिश्चित नहीं कर रही है और मज़दूरों को ठेकेदारों और मालिकों द्वारा निचोड़े जाने के लिए छोड़ दिया है। यह मज़दूर संगठनों के लिए फौरी संघर्ष का सबसे बड़ा मुद्दा है। न्यूनतम मज़दूरी को पुनर्निर्धारित करवाना और उसे लागू करवाना, और साथ ही काम के घण्टे 8 के कानून को लागू करवाना और ठेका मज़दूर कानून 1970 के सारे नियमों को लागू करवाना। मज़दूर संगठनों को इसे एक देशव्यापी मुद्दा बनाने और इस पर एक जुझारू संघर्ष छेड़ने के लिए कमर कस लेनी चाहिए।

–अभिनव

पंजीयन संख्या – 71980/99, डाक पंजीयन संख्या – LW-NP/349/2006-08

लुधियाना ब्वॉयलर विस्फोट हादसे के बाद के घटनाक्रम में

मालिक–पुलिस–गुंडा गठबन्धन की भूमिका के बारे में

राजविन्दर

लुधियाना की महावीर कालोनी स्थित वीर गारमेंट्स नामक डाइंग फैक्ट्री में हुए 21अप्रैल 2008 को ब्वायलर विस्फोट हादसे व उसके बाद मालिक–पुलिस–गुण्डा गठजोड़ द्वारा की गई दमन की कार्रवाई ने विभिन्न औद्योगिक इलाकों में काम कर रहे मजदूरों की जिन्दगी के हालात को बेहद तीखेपन के साथ उजागर कर दिया है। इस घटना ने मजदूरों की जिंदगी से नावाकफ़ियत रखने वाले आम लोगों की आँखों से पर्दे हटाने का काम किया है। बहुत सी कड़वी सच्चाइयों को लागों के सामने ला दिया है। लोगों देखा कि किस प्रकार फैक्ट्री मालिकों की मुनाफे की हवस के चलते मज़दूर अक़सर ही जानलेवा हादसों का शिकार होते रहते हैं। पूरे घटनाक्रम के दौरान पुलिस का जो मजदूर विरोधी रवैया रहा उसे खासतौर पर लोगों के सामने लाया जाना ज़रूरी है।

बिगुल के पिछले अंक में छपी इस घटना के भुक्तभोगी के तौर पर पाठकों को विस्तार से इस घटना के बारे में बताना चाहता हूँ। 21 अप्रैल की रात लगभग 8:30 बजे यह हादसा हुआ। इस फैक्ट्री में कपड़ों की रंगाई होती थी। आसपास की फैक्ट्रियों के मजदूरों ने बताया कि वहाँ लगभग 20 मज़दूर काम करते थे। विस्फोट के बाद जब नजदीक की फैक्ट्रियों और इलाके में रहने वाले लोग वहाँ पहुंचे तो तबाही का आलम था। फैक्ट्री की इमारत मलबे के ढेर में बदल चुकी थी। जख्मी लोगों के राने–चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं। लोगों ने उन्हें बाहर निकाला और अस्पताल ले जाने के लिए मालिक की कार का इस्तेमाल करना चाहा। कोई हैरानी की बात नहीं कि मजदूरों को कीड़े–मकोड़ों के बराबर समझने वाले वर्ग के इस सदस्य ने मना कर दिया और आटो में ले जाने को कहा। लोगों के दबाव डालने पर घायलों में से गंभीर रूप से घायल हो चुके तीन मजदूरों को सी.एम.सी. अस्पताल पहुँचाया गया और दो को कालड़ा अस्पताल में। इन पाँच मजदूरों में बारह और तेरह उम्र के दो बच्चे भी शामिल थे।

घटनास्थल पर एक औरत रोती–चिल्लाती इधर–उधर दौड़ रही थी। उसका एक बच्चा फैक्ट्री में काम करता था और हादसे के बाद गायब था। हमने बाद में उस औरत को ढूढ़ने की कोशिश की लेकिन उसका कुछ भी पता नहीं चला।

दुर्घटना के आधे घण्टे बाद पुलिस पहुँची । उसने पहुँचते ही अपना असली रंग दिखाया। पहले तो राहत कार्यों में लगे लोगों को लाठियों के जोर से वहाँ से खदेड़ा गया। फिर फैक्ट्री की घेराबन्दी कर दी गई। लोग कह रहे थे कि मलबा हटाया जाये क्योंकि उन्हें शक था कि मलबे के नीचे और लोग दबे हो सकते है। हो सकता है कि कोई बेहोशी की हालत में जिन्दा पड़ा हो। लेकिन फैक्ट्री मालिकों की उंगलियों पर नाचने वाली पुलिस ने लोगों की एक न सुनी ।

वहां पर मौजूद लोंगो में बिगुल के कुछ पाठकों के साथ लखविन्दर घटनास्थल पर पहुँचा । रात के लगभग 11.30 बजे कुछ मीडिया वाले भी वहाँ मैाजूद थे। हम भी उनक साथ फैक्ट्री की हालत देखने के लिए अंदर गये। कई फैक्ट्रियों के मालिक वहाँ मौजूद थे। उनका रवैया अमानवीय था। वे मजदूरों के दबे होने की किसी भी आशंका से इनकार कर रहे थे। मालिक मीडिया कर्मियों के सामने यह भरोसा दिला रहे थे कि सिर्फ तीन ही मजदूर काम पर थे और उन्हें अस्पताल भेज दिया गया है। गम्भीर रूप से घायल हुए मजदूरों की चोटों को वे मामूली बता रहे थे और कह रहे थे कि मजदूरों का कोई नुकसान हुआ ही नहीं! बेचारे वर्मा साहब (मालिक) ही नुकसान उठाये हैं!! मालिक से राहत कार्यों के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि प्रशासन को खबर कर दी गयी है और मलबा हटाने का काम जल्दी ही शुरू कर दिया जायेगा। उनसे पूछा गया कि ब्वायलर ऑपरेट करने वाला कहां है। इसपर उनका जवाब था कि उसी के कारण तो सब हुआ है...चला गया होगा कहीं जर्दा लगाने... भाग गया है। पुलिस ने इसी को सच मान लिया जबकि तथ्य किसी और ही अनहोनी की तरफ इशारा कर रहे थे।

हम दूसरे दिन दोपहर एक बजे के करीब वहाँ पहुचे। दूसरे अखबारों के पत्रकार भी वहाँ मौजूद थे । हमें हैरानी हुई कि हादसे को 17 घण्टे गुज़र जाने के बाद भी अभी तक कोई मलबा नहीं हटाया गया। वहां आस–पास 200–250 के करीब मजदूर बिखरे हुए थे। पुलिस उन्हें फैक्ट्री के नजदीक नहीं आने दे रही थी। मज़दूरों में से जो कोई भी नजदीक आता उसे भगा दिया जाता। हम पत्रकार के तौर पर वहाँ पहुचे थे। इसलिये हम पास जाने में कामयाब हुए। हमारी पूछताछ से मालिकों को घबराहट हुई। फैक्ट्री मालिक सुरेश वर्मा, उसके लड़के अभि वर्मा और अन्य ने मुझे घेरकर धमकाते हुए कहा कि तुम कौन होते हो पूछ–ताछ करने वाले और बिना कोई बात सुने थप्पड़ मारने शुरू कर दिये। जोधेवाल पुलिस थाने का एस.एस. आई रजिन्दर वहाँ बीच में ही खड़ा था लेकिन वह सरेआम मालिकों का पक्ष ले रहा था। स्थानीय लोगों ने मालिक व पुलिस के इस व्यवहार का विरोध किया। जमकर नारेबाजी की गई। मैंने लोगों को संबोधित भी किया। लोगों का गुस्सा देखकर फैक्ट्री मालिक व उसके अन्य सभी साथी चूहे बन गए और फैक्ट्री के अन्दर घुस गए। अब कोई पुलिस वाला मजदूरों को वहाँ से भगाने की हिम्मत नहीं दिखा रहा था। इतने में वहां और भी पुलिस पहुँच गई। लोगों के गुस्से को देखते हुए एस.एच.ओ. ने नरमी का दिखावा किया। नारेबाजी लगातार चल रही थी। पुलिस को मौके पर ही मालिक व ए.एस.आई के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज करनी पड़ी। इस रिपोर्ट का पुलिस ने क्या किया कुछ पता नहीं।

लोगों के गुस्से को देखते हुए दो क्रेन मशीनें मंगवाई गईं। लेकिन जहाँ से ज़रूरी था वहां से नहीं बल्कि समय निकालने के लिए इधर–उधर से सामान उठाया गया। इमारत के उस हिस्से को छुआ तक नहीं जा रहा था जहाँ लोगों को मजदूरों के दबे होने का शक था। मालिक व पुलिस की असल मंशा जाहिर हो रही थी कि वे रात होने तक मलबा उठाने का इंतजार करना चाहते हैं ताकि लोगों की गैरहाजिरी में मलबा हटाया जा सके। लोगों ने पहलकदमी लेते हुए आगे बढ़ कर मलबा हटाना शुरू कर दिया। नौभास के साथी भी राहत–कार्यों में लोगों का साथ देने लगे। लगभग 200 लोग पूरी लगन के साथ मलबा हटा रहे थे। मालिक व पुलिस के चेहरे पीले पड़ रहे थे। मालिकों ने फैक्टरी के आफिस के साथ लटक रही छत के सरिये कटवाने शुरू कर दिये ताकि मलबा उठाने के काम में बाधा डाली जा सके। लेकिन लोगों के सख्त विरोध करने पर इस कार्रवाई पर रोक लगानी पड़ी।

कुछ समय के बाद भारी पुलिस फोर्स आई, मालिकों के गुण्डे भी लाठियों से लैस होकर पहुँच चुके थे। पुलिस ने नौजवान भारत सभा के सदस्यों पर फैक्ट्री से एक बैग चोरी करने का इल्ज़ाम लगाया और लोगों पर लाठीचार्ज शुरू कर दिया गया। हम लोगों को पकड़कर पुलिस प्राइवेट गाड़ियों में डालने लगी। लोगों ने कोई और रास्ता न बनता देख अपना बचाव खुद करने की ठानी। मुकाबला किया। अच्छी झड़प हुई। मालिक–पुलिस–गुण्डा गठजोड़ को एक बार फिर दुम दबाकर भागना पड़ा।

मैं लोगों के बीच खड़ा था कि एक आदमी, जिसने अपने आपको किसी अखबार का पत्रकार बताया, मुझे बातचीत के बहाने एक तरफ ले गया। पुलिस मौका देखकर मुझपर टूट पड़ी और उठाकर फैक्ट्री के अन्दर ले गई। बाहर लोगों पर फिर लाठीचार्ज कर दिया गया। मालिक व पुलिस ने मेरे साथ मारपीट की और ज़लील करने की कोशिश की। रात लगभग 11 बजे खतरनाक अपराधियों की तरह जिप्सी में दोनों बाँहे बांधकर जोधेवाल थाने ले जाया गया। पुलिस ने मुझपर, लखविंदर और परमिंदर सहित एक मज़दूर गौरीशंकर पर भी, जो राहत कार्यों में जुटे लोगों को पानी पिला रहा था, इरादतन कत्ल व डकैती जैसे केस बना दिये । इसके अलावा 50 अज्ञात लोगों पर भी यही केस ठोंक दिये गये। हवालात में मुझे पूछताछ करने के बहाने बार–बार पीटा गया। 25 मई को मुझे लुधियाना के ताजपुर रोड स्थित सेंट्रल जेल भेज दिया गया।

विस्फोट की घटना के अगले दिन 22 अप्रैल को भारी पुलिस फोर्स और मालिकों के गुण्डों ने लाठियों से लैस होकर इलाके में दहशत फैलाने के लिए महावीर कालोनी और उसके साथ सटे भरपूर नगर, पुनीत नगर के इलाके में गुंडागर्दी का नंगा नाच खेला। लोगों को घरों में घुस–घुस कर पीटा गया। दरिन्दगी की हद तो यह थी कि महिलाओं और बच्चों तक को नहीं बख्शा गया। स्थानीय लोगों का कहना था कि ऐसी गुंडागर्दी कभी नहीं देखी गई। पुलिस सरेआम मालिकों का साथ दे रही थी और राहत कार्यों में लगे हुए लोगों के सिर फोड़ रही थी। भरपूर नगर की गली नं 3 से गौरीशंकर नाम के मजदूर को घर वालों के सामने मालिक और उनके गुण्डे पीटते हुए उठाकर ले गये उसकी अभी तक कोई खबर नहीं है। उसके खिलाफ भी झूठा पुलिस केस दर्ज किया गया है। मीडिया से तसवीरें व वीडियो लेकर हफ्ता भर छापामारी चलती रही और लोगों को धमकाया जाता रहा।

अगले दिन भोर में जब बिगुल मजदूर दस्ता और नौजवान भरत सभा के सदस्य उस इलाके में गए तो लोगों में भारी दहशत थी। काफी लोग तो इतने डरे हुए थे कि ठीक से बात तक नहीं कर रहे थे। एक मजदूर ने कहा कि यह तो होना ही था। जो मजदूर के हित की बात करता है उसके साथ ऐसा ही होता है। उनके ख़्याल से गलती बिगुल वालों की ही थी!

जो मजदूर घायल हुए थे और अस्पताल में दाखिल करवाए गए थे उनका अब कुछ भी पता नहीं है। उनका पूरा इलाज हुआ कि नहीं, वे कहाँ गए आदि सवालों के कोई जवाब नहीं थे। जब वे अस्पताल में दाख़िल थे तब भी किसी को उनसे मिलने नहीं दिया जा रहा था। चार दिन बाद ही उन्हें गायब कर दिया गया। इलाके के कुछ मजदूरों ने बताया कि दो ट्रक भरपूर नगर में आए कुछ लोगों को ट्रकों पर सामान सहित लाद कर ले गए। आशंका जताई जा रही है कि ये फैक्ट्री में काम करने वाले लोगों के परिवार थे जिनको इस इलाके से कहीं दूर ले जाया गया है।

घायलों का गायब कर दिया जाना, पुलिस की ओर से लगातार दमन चक्र चलाकर लोगों को चुप करवाने की यह सारी कार्रवाई अपने आप काफी सवाल पैदा कर रही है। अगर मालिक ईमानदार थे और मलबे के नीचे किसी के न होने पर उनका पक्का यकीन था तो मलबा हटाते लोगों पर वे इतना लाल–पीला क्यों हो रहे थे। मलबा पुरअमन तरीके से क्यों नही हटाने दिया गया? यह गुंडागर्दी क्यों की गई? मलबा उठाने में पहले 40 घण्टे की देरी और फिर लोगों की गैरहाजिरी में रात के वक्त ही क्यों उठाया गया? हादसे के तुरंत बाद एंबुलेंस और फायर बिग्रेड क्यों नहीं जो कि हादसे के मंगवायी गई? असल में मालिक व पुलिस पारदर्शिता चाहते ही नहीं थे।

23 अप्रैल को स्थानीय मजदूर, मुलाजिम संगठनों के प्रतिनिधियों और प्रगतिशील बुद्वजीवियों का एक प्रतिनिधिमण्डल एस.एस.पी. आर.के. जैसवाल से मिला। इस मामले की जांच करने व इंसाफ की मांग की गई तो उसने दो टूक शब्दों में मालिकों की तरफदारी करते हुए कहा कि जो कोई भी कानून को हाथ में लेगा उसके साथ यही व्यवहार किया जायेगा। यह सीधे–सीधे मालिकों की उंगलियों पर नाचना था। डीएसपी, लुधियाना भी बात सुनने को तैयार नहीं था। वह कह रहा था कि हम सबक सिखा कर रहेंगे।

पुलिस वालों का सुर तब बदला जब डी.सी. दफ्तर के आगे जबर्दस्त धरना–प्रदर्शन किया गया। अलग–अलग जन–संगठनों ने मालिक–पुलिस के गुण्डा गँठजोड़ के खिलाफ साझे तौर पर संघर्ष करने का फैसला किया था। इसी संघर्ष की पहली कड़ी के तौर पर 29 अप्रैल को डी.सी. दफ्तर के आगे धरना लगाया गया। धरने से पहले मालिक–पुलिस–गुण्डा गठबंधन की दरिंदगी और घटना की ठीक जानकारी के बारे में एक साझा पर्चा बाँटा गया। घटनास्थल के इलाके के कुछ लोग भी धरने में पहुँचे थे। पंजाब व अन्य राज्यों के जनवादी संगठनों ने पुलिस की तानाशाहाना कारगुज़ारियों की जमकर निंदा की। अब सभी पुलिस अधिकारी तमीज से बात करते हैं। केस रद्द करने का आश्वासन भी दिया गया है। लेकिन इस पर अभी कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

3 जून को आयोजित दमन विरोधी साझे कन्वेन्शन में और भी बड़ी संख्या में पंजाब के अलग–अलग संगठनों का समर्थन प्राप्त हुआ है। अब देखना यह है कि पुलिस केस रद्द करती है या नहीं। बहरहाल, इस पूरे घटनाक्रम ने पुलिस मशीनरी की पूँजीपति–भक्ति को पूरी तरह लोगों के सामने ला दिया है।

परिकल्पना प्रकाशन की नयी प्रस्तुतियाँ

तरुणाई का तराना
अनु. विश्वनाथ मिश्र
मूल्य : रु. 150.00
लेखक : याङ मो

तीन टके का उपन्यास
लेखक : बेर्टोल्ट ब्रेष्ट
मूल्य : रु. 150.00

चुनी हुई कहानियाँ
खण्ड 3
लेखक : मक्सिम गार्की
मूल्य : रु. 75.00

बिगुल
एक अंक का मूल्य : रु. 3.00
वार्षिक : रु. 40.00
(डाक व्यय सहित)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : **डा. दूधनाथ, सुखविन्दर** • सम्पादकीय पता : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006** • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ